गंगा-पुस्तकमाला का २०५वाँ पुष्प

# सोमनाथ

[ उपन्यास ]

लेखक
ठाकुर श्रीनाथसिंह
( भूतपूर्व संपादक सरस्वती, बालसखा, हल, देशदूत और
वर्तमान संपादक दीदी )

—:*:—

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, गौतम बुद्ध-मार्ग
लखनऊ

थम बार ]　　संवत् २०१२　　[ मूल्य ३)

स्वयं कवि और लेखक

तथा

कवियों और लेखकों के सच्चे और अच्छे मित्र

श्रीदुलारेलाल भार्गव

के

कर-कमलों में सादर समर्पित

—श्रीनाथसिंह

# भूमिका

सोमनाथ के जिस ऐतिहासिक मंदिर को आज से लगभग एक हज़ार वर्ष पूर्व महमूद ग़ज़नी ने विध्वंस कर डाला था, उसका पुनर्निर्माण हो गया। इस प्रकार आज से एक हज़ार वर्ष पूर्व जो कहानी आरंभ हुई थी, वह समाप्त हो गई।

इतनी लंबी कथा को इस लघु उपन्यास में अंकित करना निश्चय ही एक कठिन कार्य है। परंतु यह कठिन कार्य इस उपन्यास के कतिपय पात्रों द्वारा सरल हो गया है। इन पात्रों की कल्पना हिंदुओं के इस विश्वास पर आधारित है कि जीव फिर-फिर जन्म लेता है। इस प्रकार एक पात्र है रत्ना, जो इस उपन्यास की नायिका है, और जो अपने पूर्व-जन्म में उस समय विद्यमान थी, जब ग़ज़नी ने इस मंदिर को ध्वस्त किया था।

हिंदू प्रेत-योनि में भी विश्वास करते हैं। इसी विश्वास के आधार पर इस उपन्यास में एक दूसरे नारी-पात्र की कल्पना की गई है, जो उस समय जीवित थी, जब यह घटना घटी थी, और जिसने सब कुछ अपनी आँखों से देखा था। इस उपन्यास के और भी पात्र हैं, जो वर्तमान समय में, जब कि

भारत स्वाधीन हो गया है, जीवित हैं। इन्हीं पात्रों के सहारे भारत-विभाजन के समय की घटनाओं की पृष्ठ-भूमि पर, जब कि नवाब जूनागढ़ के पाकिस्तान भाग जाने के बाद सोमनाथ के मंदिर का पुनर्निर्माण हुआ, यह कथा इस लघु उपन्यास के रूप में बाँधी जा सकी है।

कहना नहीं होगा कि ये सब पात्र सर्वथा कल्पित हैं। एक प्रकार से यह संपूर्ण उपन्यास ही लेखक की कल्पना-मात्र है। परंतु लेखक ने इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रक्खा है कि कल्पना का मंडप इतिहास की ठोस भित्ति पर आच्छादित हो। इस प्रकार यह कल्पना सत्य को उभारने में सफल हुई है।

नाश और निर्माण प्रकृति का नियम है। मनुष्य सृष्टि के इस नाटक का प्रतीक-मात्र है। सोमनाथ मानव की परमेश्वर के प्रति श्रद्धा के प्रतीक थे, तो ग़ज़नी की तलवार भी उसी परमेश्वर की एक शक्ति का स्वरूप थी। और, तब से अब तक हिंदू-मुसलमानों के रक्त से इतिहास के पृष्ठ जो लाल-लाल हो उठे, वह परमेश्वर की लीला ही थी। उस पर किसी का वश नहीं था।

यह मूल सत्य है, जिसकी ओर सोमनाथ की यह कथा संकेत करती है। ब्रिटिश शासकों ने अपने स्वार्थ-वश इतिहास के इस प्रकरण को हमारे सामने इस प्रकार उपस्थित किया कि एक हज़ार वर्ष पूर्व की यह घटना वर्तमान युग के हिंदू और

मुसलमानों के बीच तीव्र घृणा और वैर का कारण बन गई, सोमनाथ की असीम क्षमामयी प्रतिमा इसी वैर-भाव की प्रतीक बन गई, और इसी के कारण भारत का विभाजन तक हो गया। यह लघु उपन्यास पाठकों के सामने इसी वैर-भाव पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करने की सामग्री प्रस्तुत करता है। इससे प्रकट होगा कि वे सब तर्क, जो हिंदू-मुसलमान रोष में आकर एक दूसरे के विरुद्ध व्यक्त करते हैं, कितने व्यर्थ और निर्मूल हैं।

एक प्रश्न, जो अज्ञानी लोग प्रायः किया करते हैं, यह है कि सोमनाथ अपने भक्तों की रक्षा क्यों नहीं कर सके ? तो क्या वह सचमुच एक क़ीमती पत्थर के सिवा और कुछ नहीं थे ? इस उपन्यास में इस प्रश्न का उत्तर भी मिलेगा।

बहुत कम लोग जानते हैं कि सोमनाथ के मंदिर पर ग़ज़नी को उस मंदिर का एक पुजारी ही, जिसका नाम देवशर्मा था, चढ़ा लाया था। ग़ज़नी तो मंदिर के अंदर की अपार धन-राशि लूटकर ले गया, और देवशर्मा उस मंदिर और प्रदेश का राजा बना। इस देवशर्मा को दुर्लभराज ने मार भगाया, और मंदिर का नवनिर्माण कराया। इस उपन्यास के एक पात्र हरदेव सोलंकी हैं, जो अपने को इन्हीं दुर्लभराज का वंशज बतलाते हैं, और जो यह मानते हैं कि ग़ज़नी ने इस मंदिर को नहीं तोड़ा था। ख़ैर, कुछ हो, सोमनाथ का वर्तमान नवनिर्मित मंदिर पूर्व काल में चाहे जो

रहा हो, अब वह महात्मा गांधी के उस भारत का प्रतीक है, जिसमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, पारसी, सिक्ख, सभी प्रेम से एक दूसरे के धर्मों का आदर करते हुए रह रहे हैं। इस उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक इस लक्ष्य तक पहुँचें, तो हम अपने श्रम को सार्थक समझेंगे। सोमनाथ की जय !

अंत में मैं गंगा-पुस्तकमाला के यशस्वी संचालक, सुकवि और सुलेखक श्रीदुलारेलाल भार्गव का कृतज्ञ हूँ, जिनकी कृपा से यह उपन्यास आज पुस्तक के रूप में प्रकाशित होकर पाठकों के हाथों में पहुँच रहा है।

प्रयाग
१२ जून, १९५५

श्रीनाथसिंह

# ( १ )

ज्ञानचंद ने आज के समाचार-पत्र में पढ़ा कि सोमनाथ के जिस ऐतिहासिक मंदिर को आज से १,००० वर्ष पूर्व महमूद ग़ज़नी ने विध्वंस कर डाला था, उसका पुनर्निर्माण होगा, और मंदिर में मूर्ति की स्थापना इसी मास के अंदर हो जायगी।

ज्ञानचंद का चित्त चंचल हो उठा। एक विचित्र प्रकार के आनंद और उत्साह से उनका हृदय भर गया। पाकिस्तान से भागने के समय के सारे कष्ट, शरणार्थी-कैंप के सारे अभाव, स्वजनों के वियोग की सारी स्मृतियाँ उन्हें भूल गईं। याद रह गई केवल रत्ना, और उन्हें लगा कि सोमनाथ के भग्न शिखर से वह उन्हें पुकार रही है।

रत्ना उनके पड़ोसी की एकमात्र षोडशवर्षीया कन्या थी, बचपन से उनकी साथिन। उसके पूर्वज काठियावाड़ के उन सोलंकी क्षत्रियों में थे, जो महमूद ग़ज़नी से लड़े थे। जब काठियावाड़ में सोलंकियों का राज्य ख़त्म हुआ, तब वे जीविका की तलाश में सारे भारत में भटकने लगे। उसके परदादा व्यापार के सिलसिले में लाहौर आए, और फिर वहीं बस गए। इधर जब लाहौर ख़ाली करने का प्रश्न उठा, तब रत्ना और उसके पिता ने निश्चय किया कि अब वे पुनः

काठियावाड़ में जाकर रहेंगे। वहाँ उसके एक मामा थे, जिनकी बीरबल-बंदर में दूकान थी। सोमनाथ का मंदिर इसी बंदर के पास था।

रमा अपने पूर्वजों की ये सब कहानियाँ, जैसी अपने माता-पिता से सुनती थी, वैसी ही, ज्ञानचंद को सुनाया करती थी। पिता की एकमात्र संतान होने के कारण वह उनकी अपार संपत्ति की उत्तराधिकारिणी थी, और कहा करती थी कि वह ब्याह नहीं करेगी। पिता के साथ वह सोमनाथ में जाकर रहेगी, और अपनी सारी शक्ति और सारा धन उसी मंदिर के पुनरुद्धार में लगावेगी।

परंतु मनुष्य का सोचा कब होता है? जिस दिन उसने रेडियो में सुना कि लाहौर पाकिस्तान में रहेगा, उसी दिन इतने जोर की मार-काट शुरू हो गई कि उसे अपने माता-पिता के साथ, सब कुछ छोड़कर, शरणार्थी कैंप में चला आना पड़ा। ज्ञानचंद का परिवार बड़ा था। माता-पिता, भाई-बहन, सभी थे। ये सब भी उसी दिन शरणार्थी कैंप में पहुँचे। शाम होते-होते सब अमृतसर जानेवाली शरणार्थी-ट्रेन में सवार हो गए, और गाड़ी चली। परंतु कुछ ही दूर गई थी कि पाकिस्तानियों ने उसे रोका, और हमला बोल दिया। बच्चे काटे जाने लगे, माल-असबाब लूटा जाने लगा, मर्द क़त्ल होने लगे, और युवती स्त्रियाँ छीनी जाने लगीं!

ज्ञानचंद के देखते-देखते उनका सारा परिवार क़त्ल हो

गया, और परिवार की युवती कन्याएँ छीन ली गईं। रत्ना के मा-बाप मार डाले गए, और रत्ना जबरदस्ती गाड़ी के बाहर घसीट ले जाई गई। उन सबके बचाने में ज्ञानचंद घायल हुए, और बेहोश हो गए।

जब गाड़ी अमृतसर पहुँची, और डॉक्टर ने मुँह पर पानी छिड़ककर तथा इंजेक्शन लगाकर उन्हें चेतना प्रदान की, तब उन्होंने हाथ जोड़कर, गिड़गिड़ाकर केवल एक प्रार्थना की—"डॉक्टर साहब! मुझे मार डालिए। अब जिंदा रहकर क्या करूँगा?"

"धैर्य मत खोओ। हिंदुस्थान को तुम्हारी जरूरत है।" कहकर डॉक्टर आगे बढ़ गया, और ज्ञानचंद अपनी शारीरिक तथा मानसिक वेदना से तड़फड़ाने लगे।

अस्पताल से छुट्टी पाने पर उन्होंने रत्ना की खोज आरंभ की। उसका नाम अपहृता अबलाओं की सूची में दर्ज कराया। पता लगा, वह पाकिस्तान में है, परंतु फिर भी उसका उद्धार नहीं हो सका। जो मर गए थे, उनके लिये सब भगवान् को धन्यवाद दे रहे थे। जो जीवित थे, उनके लिये सबको चिंता थी। ज्ञानचंद सब कुछ भुला सकते थे, परंतु रत्ना उन्हें न भूलती थी। पता नहीं, बेचारी पर क्या बीत रही हो? कौन जाने, जीवित हो या न हो?

इसी चिंताग्नि में वह झुलस रहे थे कि सोमनाथ के मंदिर के पुनर्निर्माण का समाचार पढ़ा। उनके सामने चित्रपट के

दृश्यों की भाँति लाहौर की आनंदमय घड़ियों के वे दृश्य नाच गए, जब रत्ना उन्हें सोमनाथ की कहानियाँ सुनाया करती थी।

वह सोचने लगे, आज रत्ना भारत में होती, तो कितनी प्रसन्न होती। जो वह चाहती थी, आज अपने आप होने जा रहा है। वह होती, तो आज के दिन जरूर सोमनाथ के दर्शनार्थ जाती। परंतु वह नहीं है, तो मैं उसकी ओर से जाकर सोमनाथ के दर्शन करूँगा। इससे उसकी आत्मा को, जहाँ कहीं भी वह होगी, तृप्ति मिलेगी।

और वह सोमनाथ के लिये रवाना हो गए। २० वर्ष का भावुक युवक, जो दो दिन पहले जीवन से इतना निराश था कि आत्महत्या की बात सोच रहा था, आज इतना आशा-पूर्ण हो उठा कि उमंग से भर गया। उनकी कल्पना के पट पर सोमनाथ के खँडहर के अनुमानित चित्र अंकित हो-हो उठते, और उन्हें लगता कि रत्ना अकेली उन खँडहरों में भटक रही है।

रेलगाड़ी धड़ाधड़ चली जा रही थी। स्टेशन पर स्टेशन छूट रहे थे। मुसाफिर चढ़-उतर रहे थे। परंतु ज्ञानचंद अपने ही चिंतन में इस तरह सिमटे बैठे थे, जैसे काष्ठ-प्रतिमा हो। उन्हें न रात में नींद थी, और न दिन में चैन। आँखें बंद किए वह सोच रहे थे, केवल सोच रहे थे कि महमूद गजनी के हाथ केवल अपयश लगा। सोमनाथ तो अजर और अमर हैं।

बिलकुल वैसे ही, जैसे गांधीजी अमर हैं, और गोडसे उनके शरीर का विनाश करके केवल अपयश का भागी बना।

कई दिन यात्रा करने और कई जगह गाड़ी बदलने के बाद वह वीरबल-स्टेशन पर पहुँचे। जब स्टेशन के बाहर आए, उनके कानों में आवाज़ गूँज उठी—"सोमनाथ के लिये बस तैयार है।"

यंत्र-चालित मूर्ति के समान वह बस पर जाकर बैठ गए, और आस-पास का दृश्य देखने लगे। दक्षिण में अनंत नील समुद्र लहरा रहा था। उसी के किनारे-किनारे बस पश्चिम की ओर चली जा रही थी। बस में सोमनाथ की चर्चा हो रही थी। अनेक लोग, जो दूर-दूर से आए थे, सोमनाथ का भग्न मंदिर देखने जा रहे थे। स्थानीय लोग उसका इतिहास बता रहे थे।

कुछ ही दूर जाने पर सोमनाथ का भग्न मंदिर दिखाई पड़ने लगा। अब से १,००० वर्ष पूर्व भारत का यह भाग कितना समृद्धिशाली था, इसकी वह कहानी कह रहा था।

नवागंतुकों ने उस पर दृष्टि गड़ा दी थी। ज्ञानचंद के लिये वह अद्भुत दृश्य था, जैसे वह मंदिर लता वृक्ष की भाँति पृथ्वी में से उग आया हो। उसके ऊँचे ऊँचे प्राचीर हृदय में श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न कर रहे थे। पत्थरों की काट-छाँट भारत की प्राचीन शिल्प-कला की कहानी कह रही थी। विस्तृत वसुंधरा

पर अनंत प्रकाश के नीचे वह अजर और अमर प्रतीत हो रहा था।

ज्ञानचंद को लगा, जैसे वह देवलोक के द्वार पर पहुँच गए हैं। समुद्र के ऊपर से आनेवाली ठंडी-ठंडी हवा ने उन्हें नवीन स्फूर्ति प्रदान की। भग्न मंदिर, आस-पास का प्रदेश और समुद्र, सब उन्हें निराकार की मूर्ति-से प्रतीत हो रहे थे। मंदिर क्या है, मानो जो कुछ अनंत है, सुंदर है, उसी की निशानी है। उन्हें लगा, वह भी अजर-अमर हैं। लाहौर में उनके मित्र, परिचित, बंधु-बांधव, जो भी मारे गए हैं, सब अजर-अमर हैं। केवल वह उन्हें देख नहीं सकते थे। आत्मा की अमरता पर उन्होंने गीता में बहुत पढ़ा था, परंतु उसका प्रत्यक्ष अनुभव उन्हें आज हुआ।

"ओह! यहाँ आकर मन को कितनी शांति मिली!" उनके मुख से अनायास ही यह वाक्य निकल गया। वाक्य पूरा भी न हुआ था कि बस रुकी, और उनके कानों में आवाज़ आई--"उतरो, सोमनाथ आ गया।"

उस समय दिन के कोई बारह बजे थे। शीतकाल की धूप बड़ी सुहावनी प्रतीत हो रही थी। बस से उतरकर, उस धूप का आनंद लेते हुए, ज्ञानचंद मंदिर की ओर बढ़े।

अनेक इंजीनियर, मिस्त्री, राज उस मंदिर की बनावट पर गौर कर रहे थे। उसमें लगे पत्थर और गारे की परीक्षा हो रही थी। कितने ही इतिहास के ज्ञाता और पुरातत्त्व के पंडित

उनकी सहायता में लगे थे। पूर्ण मंदिर का कोई चित्र उन्हें उपलब्ध न था। भग्न मंदिर उनके सामने खड़ा था। उसे वे किस प्रकार वैसा ही बना दें, जैसा उस समय था, जब महमूद गजनी ने उसे तोड़ा नहीं था? उनकी समस्याओं में ज्ञानचंद इतना उलझ गए कि मंदिर के भीतर जाकर स्वयं अपनी आँखों से उसे देखने का उन्हें ध्यान ही न रहा। पुनरुद्धार-कर्ताओं के बीच में वह इस तरह खड़े हो गए, मानो वह भी उन्हीं में से एक हों। कोई उन्हें फीता पकड़ा देता, कोई उनसे कोई वस्तु लाने को कहता, कोई उनसे पानी माँगता। वह सब काम इस तरह करने लगे, मानो स्वयंसेवक बनकर वहाँ आए हों। उन्हें लगा, स्वजनों के वियोग के बाद भी, सब कुछ गँवा बैठने के बाद भी यहाँ जिंदा रहने में कुछ मजा है। उन्हें खाने-पीने की कोई चिंता न रही। उन्हें लगा, मानो वह अपने घर में हैं। जब जो चाहेंगे, मिल जायगा।

दिन कब बीत गया, उन्हें पता न चला। वहाँ जो इंजीनियर, मिस्त्री, राज आदि थे, वे कब चले गए, यह भी वह न जान सके। केवल उन्हें इस बात का आभास हुआ कि आज का काम समाप्त हुआ, कल फिर यही जाँच-पड़ताल का काम शुरू होगा।

थोड़ा सुस्ता लेने के इरादे से वह एक शिला-खंड पर बैठ गए। उन्हें कुछ झपकी-सी आ गई। उन्हें लगा, मंदिर में आरती होने जा रही है। *शंख*, घड़ियाल, नगाड़े बज रहे हैं।

एकाएक उन्हें जान पड़ा, सैकड़ों नर्तकियाँ अपने हाथों में कंचन के दीप लिए और उन दीपों में कपूर की बत्तियाँ जलाए एक साथ छमाछम नाच रही हों। एक विचित्र प्रकाश की चका-चौंध-सी उन्हें प्रतीत हुई। उन्होंने आँखें खोल दीं। कहीं कुछ न था। चारों तरफ सन्नाटा था। आकाश में पूर्णमासी का चंद्र उदय हो रहा था। दक्षिण में समुद्र गरज रहा था, और चंद्र-प्रकाश में वह भग्न मंदिर बिलकुल काला-काला, भयानक पिशाच-सा खड़ा प्रतीत हो रहा था। भय से रोंगटे खड़े हो गए।

उन्होंने अपने आपको धिक्कारते हुए कहा—"अरे ज्ञानचंद, तुम! तुम मृत्यु से डरते हो! इसी साहस के बल पर आत्म-हत्या करने की सोच रहे थे। चलो, चलो मंदिर के अंदर, आज तुम्हारे साहस की परीक्षा है।"

वह साहस समेटकर खड़े हो गए। लाख कोशिश की कि पैर मंदिर की तरफ बढ़ें, परंतु उठते ही न थे—जैसे किसी ने बाँध दिया हो। उन्होंने ज़ोर से पुकारकर कहा—"भगवान सोमनाथ! मुझे शक्ति दो, मैं तुम्हारे मंदिर के भीतर प्रवेश कर सकूँ। जब तुमने अपनी मूर्ति के भंजक गज़नी को नहीं रोका, तब मुझे क्यों रोकते हो? मैं तो तुम्हारा दास हूँ।"

उनकी आवाज़ की प्रतिध्वनि समुद्र के गर्जन से भी ज़्यादा शोर करती हुई उनके कानों से टकराई, और फिर चारों ओर सन्नाटा छा गया।

एकाएक उन्होंने देखा, निस्तब्ध निशा में उस भग्न मंदिर के द्वार पर कोई दीप लिए खड़ा है, और सुसंस्कृता युवती के-से मधुर कंठ से कह रहा है—"आइए, पधारिए।"

उस निर्जन में मानव-स्वर सुनने से ज्ञानचंद का भय कुछ कम हुआ। उनके पैरों में शक्ति आई। वह मंदिर के द्वार तक गए। देखा, एक परम रूपवती नवयौवना कन्या, हाथ में दीप लिए, उनके सामने खड़ी है। जब वह क़रीब पहुँचे, दोनों हाथों की अंजलि में उस दीप को रखकर, उसे उनकी ओर बढ़ा-कर और फिर अपनी ओर खींचकर तथा मस्तक झुकाकर उसने उनका अभिवादन किया, और कहा—"पधारिए।" और आगे-आगे चलने लगी।

ज्ञानचंद मंत्र-मुग्ध-से उसके पीछे चल दिए। मंदिर में ज्यादातर दीवारें ही खड़ी थीं, और दूर तक काली छाया पड़ रही थी। जहाँ कहीं दीवारें छोटी हो गई थीं, चंद्र-प्रकाश आ रहा था। उस चंद्र-प्रकाश में ज्ञानचंद ने देखा, वह कोई उच्च कुलोत्पन्न बाला है। बालों को उसने बड़े सुंदर ढंग से इस तरह सँवारा है, जैसे काला नाग कुंडली मारे बैठा हो। उसके बीच में एक रत्न गुँथा था, जो इस प्रकार चमक रहा था, जैसे काले बादलों के बीच से चंद्रमा निकल रहा हो। सुचिक्कन पृष्ठ-भाग पर कंचुकी के सुनहले बंद चमक-चमक उठते थे। कटि से नीचे घुटनों तक एक पेटीकोट-सा था, जो बहुरंगा था। उसके ऊपर रत्न-जटित स्वर्ण-करधनी थी। पैरों में पायल बज रही थी। ऐसा

स्वस्थ, सुगठित, सुअलंकृत नारी का शरीर ज्ञानचंद ने पहले कभी नहीं देखा था। उसके शरीर में लगे अंगरागों की गंध और उसके बालों में गुँथे फूलों की बास बहुत ही मनोमुग्ध-कारिणी थी।

उसके पीछे-पीछे चलते हुए ज्ञानचंद के मन में आया कि पूछें, वह कौन है? इस भयावनी निशा में, इस उजड़े मंदिर में इतना स्वस्थ शरीर, इतना सुंदर रूप और इतने बहुमूल्य रत्नाभूषण लेकर चलने में क्या इसे कोई भय नहीं लगता? पर उन्हें पूछने का साहस न हुआ। फिर उनके मन में आया कि पूछें, वह मानवी है या दानवी? पर यह पूछने का भी साहस न हुआ।

चाँदनी रात में ऊँची दीवारों की काली-काली परछाइयों के बीच, उस रहस्यमयी नारी के पीछे-पीछे चलते समय, ज्ञानचंद को प्रतीत हुआ, जैसे कोई सपना देख रहे हों। पर नहीं, यह तो प्रत्यक्ष था। उन्होंने सोचा, शायद यह किसी ऐसे परिवार की कन्या हो, जो इस विशाल खँडहर में कहीं रहता हो। पर उससे यह पूछने का भी उन्हें साहस न हुआ।

एक स्थान पर पहुँचकर वह युवती रुकी, और मंद स्वर में बोली—"यह रहे भगवान सोमनाथ।"

"मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता।"

"मैं बताती हूँ।" कहती हुई, वहीं दीप रखकर, द्रुत गति से नृत्य-सा करती हुई वह एक ओर गई, और हाथों की अंजलि

में मदार के से फूल और बेलपत्र ले आई। उनको उसने नृत्य-सा करते हुए इस तरह बिखराया कि एक गोल वृत्त-सा बन गया।

ज्ञानचंद को जान पड़ा, जैसे वहाँ एक विशाल, श्याम वर्ण का शिवलिंग हो, जिसके गिर्द उस युवती ने उन पुष्पों को बिखेर दिया हो।

युवती बोली—"देखा ?"

"हाँ।"

ज्ञानचंद तत्काल पेट के बल, लट्ठे के समान, पृथ्वी पर लोट गए, और जोर-जोर से चिल्लाने लगे —"मेरी यात्रा सफल हुई। मुझे भगवान् सोमनाथ के दर्शन हो गए। भगवान् सोमनाथ ! मैं तुम्हें साष्टांग प्रणाम करता हूँ। भगवान् सोमनाथ ! मुझे अपनी भक्ति प्रदान करो। बस, और मैं कुछ नहीं चाहता। भगवान् सोमनाथ ! सोमनाथ ! सोमनाथ !" यही रटने लगे। भग्न मंदिर के खँडहर से उनकी इस रट की प्रतिध्वनि उनके कानों से टकराने लगी।

---

ज्ञानचंद को ऐसा लगा, मानो सहस्रों ब्राह्मण एक साथ स्तुति-गान कर रहे हों, और मंदिर का विशाल घंटा बज-बज उठता हो।

उन्होंने आँखें खोल दीं। देखा, कहीं कुछ नहीं है। भग्न मंदिर की शून्य दीवारें खड़ी हैं, और चारों तरफ़ घास और झाड़ियाँ उगी हैं।

"ओह! ख़ूब सोए, और ख़ूब सपना देखा!" उन्हें जान पड़ा, जैसे ख़ुदा ने उनसे कहा है।

आश्चर्य-चकित-से वह उठ बैठे, और चारों तरफ़ दृष्टि दौड़ाने लगे। प्रातःकालीन सूर्य की रक्तिम किरणें दीवारों के ऊपरी भाग पर पड़ रही थीं। उन्हें ऐसा लगा, जैसे दीवारों को कोई रक्तस्नान करा रहा हो। निश्चय ही क्रूर ग़ज़नी के आक्रमण के समय निरपराध नर नारियों का इसी प्रकार रक्त बहा होगा।

अब प्रातःकाल हो गया था, परंतु उस निर्जन प्रदेश में अब भी नीरवता छाई हुई थी। दक्षिण की ओर से समुद्र-गर्जन स्पष्ट सुनाई पड़ रहा था, और बीच बीच में मुर्ग़ा बोल उठता था।

संभवतः तंद्रा में इन्हें यही समुद्र-गर्जन ब्राह्मणों के स्तुति-गान और यही मुर्गा का तीव्र स्वर घंटा-ध्वनि-सा प्रतीत हुआ होगा। वह मन-ही-मन तर्क करने लगे। फिर सोचा, रात को जो कुछ देखा था, क्या स्वप्न था ? क्या वह युवती, जो हाथ में रत्न-दीप लिए मुझे भगवान् सोमनाथ के दर्शन करा रही थी, मेरे अनिद्रित मस्तिष्क की कल्पना-मात्र थी ? उन्होंने शिव की मूर्ति स्पष्ट देखी थी। एक-एक बात उन्हें पूरे ब्यौरे के साथ स्मरण आ रही थी। स्वप्न इतना याद नहीं रह सकता। निश्चय ही उन्होंने जो कुछ देखा था, प्रत्यक्ष था।

तब निश्चय ही यह प्रेत-लीला थी। इस प्रकार का विचार मन में उठते ही उनके रोंगटे खड़े हो गए। एक विचित्र प्रकार के भय से उनका हृदय कंपित हो गया। वह उठे, और भय को मन के अंदर दबाने की चेष्टा करते हुए मंदिर के अंदर घूमने लगे। उन्हीं के पग की आहट उन्हें चौंका देती।

लाख चेष्टा करने पर भी वह उस शून्य खँडहर के अंदर अधिक काल तक न रह सके। बाहर निकल आए। कुछ दूर पर वह सड़क थी, जिससे होकर वह बस पर आए थे। एक-दो आदमी चल रहे थे। पास ही सोमनाथ की बस्ती थी। तंग और गंदी गलियाँ, बेमरम्मत सड़कें, पुराने, गंदे मकान। मंदिर की भाँति यह बस्ती भी उपेक्षित-सी पड़ी थी। रास्तों में यत्र-तत्र गंदे मकानों का गँदला पानी फैला था।

ज्ञानचंद महान् हिंदू-जाति के अतीत और वर्तमान पर

विचार करते हुए, निरुद्देश पग बढ़ाते हुए चले जा रहे थे। क्रमशः वह स्वच्छ और चौड़ी सड़क पर आए, जिस पर आधुनिक ढंग की कतिपय नवीन अट्टालिकाएँ खड़ी थीं। लाहौर में रत्ना जिस कोठी में रहती थी, वह कुछ इसी तरह की थी। एक नवीन भवन के सामने वह खड़े हो गए, और उसे ध्यान से देखने लगे। प्रधान द्वार के ऊपर, संगमरमर के एक सुचिक्कन खंड पर, लघु अक्षरों में लिखा था—'सोलंकी-सदन'।

इस सोलंकी शब्द-मात्र से ज्ञानचंद के हृदय में अपनेपन का कुछ ऐसा भाव जाग्रत् हुआ कि वह पूर्ण परिचित की भाँति उस मकान में प्रवेश कर गए।

पास ही दरबान खड़ा था। एक अपरिचित व्यक्ति को इस प्रकार घर में घुसते देख उसे कुछ आश्चर्य-सा हुआ। वह अपने अधिकार का प्रयोग करने ही जा रहा था कि बगल के विशाल कमरे से एक मधुर आवाज़ आई—"कहिए, किसको चाहते हैं?"

ज्ञानचंद ने देखा, एक अधेड़ आयु की महिला दीवार पर एक चित्र टाँगने में व्यस्त है।

"श्रीमान् सोलंकी साहब घर में हैं?"

"वेरावल गए हैं। आते ही होंगे।"

सहसा ज्ञानचंद का ध्यान चित्र की तरफ़ गया। वह रत्ना का फ़ोटोग्राफ़ था। वह चौंके। पूछ बैठे—"यह रत्ना का फ़ोटोग्राफ़ है, क्यों माताजी?"

"हाँ।" उस अधेड़ युवती ने उनकी ओर देखा। यह पागल-सा, दूर देश का वासी-सा, फटे-हाल युवक रत्ना को कैसे जानता है? उन्होंने मन-ही-मन तर्क किया। फिर स्पष्ट रूप से पूछा—"तुम कहाँ से आ रहे हो?"

"माताजी, मैं लाहौर से आ रहा हूँ।"

और उन्होंने बिना और प्रश्नों की प्रतीक्षा किए वह समस्त कष्ट-कथा कह सुनाई कि किस प्रकार उनके और रत्ना के समस्त कुटुंबी जन मारे गए, और रत्ना परिवार की अन्य युवती कन्याओं और स्त्रियों के सहित पाकिस्तानियों के चंगुल में पड़ी।

यह दर्द-भरी कथा कहते-कहते ज्ञानचंद शोक-विह्वल हो उठे, और उनकी आँखों से बड़े-बड़े आँसू टपकने लगे।

अधेड़ युवती ने आगे बढ़कर, उन्हें अपने हाथों से पकड़कर स्नेह से झकझोर दिया—"रोओ मत। आँसू बहाना स्त्री का काम है। तुम मर्द हो। अपना कर्तव्य सोचो, और उसको करो।"

ज्ञानचंद जैसे सोते से जगे। उन्हें लगा, जैसे किसी ने उन्हें जादू की लकड़ी से छू दिया हो, और वह पशु से मनुष्य बन गए हों। बोले—"माताजी! मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझे कर्तव्य-पथ दिखाया। क्या मैं आपके परिचय का सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूँ?"

"बेटा! रत्ना मेरी भांजी है। मैं उसे अपनी गोद में खिला

चुकी हूँ। वह आजन्म अविवाहिता रहकर सोमनाथ के उद्धार का देशव्यापी आंदोलन करना चाहती थी। परंतु मुझे विश्वास था कि मैं उसे शादी के लिये राजी कर लूँगी, और भगवान् सोमनाथ उसकी सब मनोकामनाएँ सिद्ध करेंगे। परंतु हाय ''!"

द्वार पर एक मोटर के आकर रुकने का आभास मिला। "लो, यह मिस्टर सोलंकी आ गए।" उस स्त्री ने अपने मन के आवेग को दबाते हुए कहा।

ज्ञानचंद ने देखा, उसी स्त्री की-सी अधेड़ आयु का, पर एक हृष्ट-पुष्ट पुरुष राजसी पोशाक धारण किए मोटर से उतरकर उनकी ओर आ रहा है।

आते ही उन्होंने उस स्त्री को संबोधित करके कहा—"किसी को पाकिस्तान भेजना पड़ेगा। चाहे जैसे हो, रत्ना को ढूँढ़-कर लाना होगा। इस प्रकार चिट्ठी-पत्री से काम नहीं चलेगा।" फिर उसने ज्ञानचद की ओर घूमकर पूछा—"यह कौन हैं?"

"किसी समय में रत्ना का पड़ोसी था। आज तो कोई नहीं हूँ। अपने ही देश में शरणार्थी का नाम धारण करके इधर-उधर भटक रहा हूँ। कहीं आश्रय नहीं पा सका। तब सोमनाथ की शरण में आया हूँ।" ज्ञानचद ने स्वयं ही अपना परिचय दे डाला।

ज्ञानचद का यह अंतिम वाक्य मिस्टर सोलंकी का बहुत

बुरा लगा। बोले—"सुना करता था कि इतिहास अपने को दुहराता है। आज उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ। जो लोग सोमनाथ पर भरोसा किए यहाँ हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे, उन्हें ग़ज़नी के आदमियों ने उसी तरह काटा, जैसे वे आज भी बकरीद के दिनों में भेड़-बकरे काटते हैं। याद है, आज से १,००० वर्ष पहले, जब सोमनाथ अपने पूर्ण वैभव पर थे, इस मंदिर के अंदर उनके पचास हज़ार भक्त मुसलमानों द्वारा गाजर-मूली की तरह काटे गए थे। आज फिर सोमनाथ की स्थापना होने जा रही है, और इसका परिणाम क्या होगा? हिंदुओं में आत्मरक्षा का भाव वैसे ही न रह जायगा; जैसे १०२४ ईसवी में नहीं था, जब ग़ज़नी ने यहाँ हमला किया था। जो लोग इस मंदिर के उद्धार में लगे हैं, वे देश के शत्रु हैं। उसे सन् १०२४ में फिर ले जाना चाहते हैं, और सन् १०२४ आया, तो क्या होगा, जानते हो? हिंदुओं का क़त्ल, उनके धन की लूट, उनकी स्त्रियों का अपहरण।"

लाहौर की लूट के दृश्य ज्ञानचंद के सामने आ गए। उनकी दृष्टि सामने दीवार पर टँगे रत्ना के चित्र पर गई।

"क्या देखते हो, उस चित्र की तरफ़। वह उस कन्या का चित्र है, जिसके हृदय में सोमनाथ की बड़ी भक्ति थी। इसकी क्या सज़ा उसे मिली। पाकिस्तानी उसका अपहरण करके ले गए, और आज इतनी बड़ी भारत-सरकार उसका उद्धार करने

में असमर्थ है। सामने जो कर्तव्य है, उसमें दत्तचित्त न होकर सरकार सोमनाथ का उद्धार करने जा रही है। यह सोमनाथ का उद्धार नहीं, उस अपमान को स्वीकार करना है, जो ग़ज़नी ने हज़ार वर्ष पहले किया था, और आज भी पाकिस्तानी कर रहे हैं।"

ज्ञानचंद को लगा कि मिस्टर सोलंकी के कहने में बहुत कुछ तथ्य है। वह ध्यान-मग्न हो गए। समुद्र के तल से जैसे कोई ज्वालामुखी फूटता है, वैसे ही उनके हृदय में एक प्रश्न उठने लगा—"सोमनाथ अपने भक्तों की रक्षा क्यों नहीं कर सके? तो क्या वह सचमुच एक क़ीमती पत्थर के सिवा और कुछ नहीं थे।"

मिस्टर सोलंकी कहते गए—"मुझे नास्तिक मत समझो। मैं तो उस वंश में पैदा हुआ हूँ, जो महादेव सोमनाथ को ही भूमि का स्वामी मानकर और अपने को उनका सेवक समझकर युगों से आचरण करता आ रहा है। सामने दीवार पर हमारे वंश-वृक्ष का नक़शा देखो। पढ़ो, सबसे ऊपर क्या लिखा है।"

ज्ञानचंद ने पढ़ा—"दुर्लभ राज।"

"हाँ, हम लोग इन्हीं के वंशज हैं। महमूद ग़ज़नी के जाने के बाद इन्हीं ने उसके प्रतिनिधि को हराकर भगवान् सोमनाथ के मंदिर का नव-निर्माण कराया था, और नवीन मूर्ति स्थापित कराई थी।"

"तब कहना चाहिए कि वर्तमान समय में मंदिर की जो दशा है, वह देख-रेख के अभाव के कारण है, और इसीलिये उसमें मूर्ति भी नहीं है।"

"नहीं। मंदिर के नव-निर्माण के बाद सन् १३०० में आलग-खाँ शिर्की ने उसे पुनः तोड़ा और लूट-पाट की। उसके बाद हिंदुओं की हालत गिरती ही गई, और अंत में यह स्थान जूनागढ़ के मुस्लिम नवाब के राज्य में शामिल हुआ, और यहाँ के हिंदुओं में फिर इतना बल और साहस नहीं उत्पन्न हो सका कि मंदिर का नव-निर्माण करें।"

मिस्टर सोलंकी कहते गए—"हिंदू-जाति के लिये सोमनाथ इतिहास की एक घटना-मात्र रह गए। परंतु हम सोलंकियों को उनका खंडित मंदिर हृदय के गंभीर घाव की भाँति पीड़ित करता रहा। हमारे वंश में ऐसे-ऐसे लोग पहले की पीढ़ियों में हुए, जिन्होंने सोमनाथ के उद्धार की बड़ी चेष्टाएँ कीं, पर वे असफल रहे। अंत में मेरे पिता ने अपनी सारी जमींदारी, जिसमें लगभग २०० गाँव हैं, जूनागढ़ के नवाब को देकर बदले में केवल यह ध्वंस मंदिर और उसके आस-पास का प्रदेश माँगा। पर नवाब राजी नहीं हुआ।"

मिस्टर सोलंकी का स्वर क्रमशः तेज़ हुआ। वह कहते गए—"शायद आप जानना चाहें कि मैंने क्या किया। मुझ पर स्वामी दयानंद के तर्कों का प्रभाव पड़ा। मैंने समझ लिया कि यहाँ मंदिर और मूर्ति की स्थापना अंधकार-युग में वेदों

का ठीक अर्थ न समझ सकने के कारण हुई। सोम तो चंद्रमा का एक नाम है। सोमनाथ की पूजा वास्तव में चंद्र-पूजा थी। बाद को जब मूर्ति-पूजा प्रचलित हुई, तब लोगों ने महादेव अर्थात् ईश्वर के उस रूप की कल्पना की होगी, जिसका प्रतीक चंद्रमा था, और इस प्रकार सोमनाथ की मूर्ति स्थापित हुई होगी।

"आज जूनागढ़ का नवाब भाग गया है। आज काठियावाड़ में ही नहीं, समस्त भारत में हिंदू-जाति को अवसर मिला है कि वह अपनी प्राचीन संस्कृति की स्थापना करे। परंतु उस संस्कृति की स्थापना सोमनाथ के भग्न मंदिर को पुनः बनवाने या काशी-विश्वनाथ के मंदिर को, जो आज मसजिद में परिणत है, पुनः मंदिर बनाने में नहीं होगी। आर्य-संस्कृति की स्थापना हिंदुओं को एक विशाल शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में विकसित करने में ही हो सकती है।"

मिस्टर सोलंकी का स्वर और भी ऊँचा हुआ। वह कहते गए—"मेरी चले, तो मैं इस मंदिर की मरम्मत का काम इसी दम बंद करा दूँ, और इस मद में जो व्यर्थ का धन व्यय होगा, उसे राष्ट्र-निर्माण के अनेक उपयोगी कामों में लगाऊँ। हमारी कन्याएँ, बहनें, माताएँ आज पाकिस्तानियों के हाथ में बंदी बनी उस घड़ी की प्रतीक्षा में विकल हैं, जब हम उनका उद्धार करेंगे। हमारा ध्यान सबसे पहले उधर जाना चाहिए। पाकिस्तान आज उस लंका के समान है, जिसमें हमारी

हजारों सीताएँ क़ैद हैं, परंतु आज हममें हनुमान् और राम कहाँ हैं, जो ऐसी लंका को फूँक दें, और ऐसे निशाचरों के सिर काट डालें। हमारा पहला काम होना चाहिए कि हम अपनी जनता में छिपे लाखों रामों और हनुमानों को खोजें, और जड़ की पूजा करके जड़ बनने से बचें। तुम्हारा क्या खयाल है ?"

ज्ञानचंद ने कहा—"मैं जन्म से मूर्ति-पूजक हूँ। मैं चाहता हूँ, भगवान् सोमनाथ का मंदिर प्राचीन गौरव प्राप्त करे। परंतु आज मैं तर्क करने की मुद्रा में नहीं हूँ। मैंने भी इतिहास पढ़ा है। हमारी हार का कारण हमारी मूर्ति-पूजा नहीं थी। सोमनाथ में शक्ति थी कि वह महमूद ग़ज़नी को भस्म कर देते, परंतु उन्होंने उसे अपने साथ खिलवाड़ करने दिया, जैसे आपका छोटा बच्चा आपका फ़ोटो बिगाड़े, तो आप उसे बिगाड़ने देंगे। मैंने कल ही भगवान् सोमनाथ के दर्शन किए हैं। मेरी तो धारणा है कि महमूद ग़ज़नी सोमनाथ की मूर्ति को खंडित नहीं कर सका है। वह मूर्ति अंतर्धान हो गई है, और किसी भक्त की प्रार्थना पर पुनः प्रकट हो सकती है।"

और ज्ञानचंद एक विचित्र आवेश में आ गए। बोले—"भगवान् सोमनाथ की मूर्ति के प्रकट होने का समय अब आया है। वह मूर्ति ज्यों ही प्रकट होगी, भारत में एक नया प्रकाश फैलेगा। हमारी-आपकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण होंगी। और, मेरी चले, तो मैं देश की सारी शक्ति इस मंदिर के नव-

निर्माण में लगा दूँ, जिसमें भगवान् सोमनाथ जल्दी-से-जल्दी प्रकट हों, और हमारा कल्याण हो। जिस भ्रष्टाचार में आज हमारा देश लिप्त हो गया है, उससे भगवान् सोमनाथ ही उसका उद्धार कर सकते हैं।"

मिस्टर सोलंकी को गुस्सा आ गया। बोले—"तुमसे तर्क करना फिज़ूल है। ख़ैर, कहो। यहाँ कैसे आए हो? हमसे क्या सहायता चाहते हो?"

श्रीमती सोलंकी, जो अब तक चुप थीं, बोलीं—"शरणार्थी युवक! जब तक तुम सोमनाथ में हो, हमारे मेहमान हो। तुम पाकिस्तान में रहे हो, वहाँ के ज़र्रे-ज़र्रे से वाक़िफ़ हो। क्या तुम हमारे लिये रत्ना की खोज में वहाँ जा सकते हो?"

"अवश्य माताजी!"

मिस्टर सोलंकी का क्रोध अभी तक कम नहीं हुआ था। बोले—"जो मनुष्य अपने बाहु-बल में विश्वास नहीं रखता और तर्क करता है कि केवल किसी मूर्ति पर जल चढ़ाने से उसकी सब मनोकामनाएँ पूर्ण हो जायँगी, उसे ऐसा जोखिम का काम सौंपने के पक्ष में मैं नहीं हूँ।"

ज्ञानचंद ने केवल उनकी तरफ़ देखा, कोई उत्तर नहीं दिया। वह तर्क करने की मुद्रा में नहीं थे। परंतु उनके चेहरे पर एक विचित्र शांति छाई हुई थी, और उनकी चितवन से अटल विश्वास की ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी। मिस्टर सोलंकी को लगा कि इस युवक के साथ वह कुछ सख़्त हो

गए हैं। उन्होंने कहा—"हमारे विचार हमारे जीवन के कटु अनुभवों से प्रभावित होते हैं। हो सकता है, अप्रिय घटनाएँ न घटी होतीं, तो हम कुछ दूसरे प्रकार सोचते।"

ज्ञानचंद ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। उनका मन उन दृश्यों में उलझा हुआ था, जो रात में उनके सामने उपस्थित हुए थे। वह मन-ही-मन मंसूबे बाँध रहे थे कि रात होने पर वह आज पुनः चुपचाप मंदिर में जायँगे, और भगवान् सोमनाथ से प्रार्थना करेंगे कि वह अपना तेज प्रकट करें।

मिस्टर सोलंकी से कोई खास सज्जन मिलने आए, और वह बाहर के कमरे में चले गए। मिसेज़ सोलंकी ने नौकर को बुलाकर आदेश दिया कि वह ज्ञानचंद को मेहमानों के ठहरने-वाले कमरे में ले जाय, और उनकी सब सुविधाओं की व्यवस्था करे। कमरे में एक पलँग बिछा हुआ था, एक छोटी-सी मेज़ और दो-तीन कुर्सियाँ पड़ी थीं। दीवार पर स्वामी दयानंद और जूनागढ़ के नवाब का फ़ोटो टँगा था। इससे ज्ञानचंद ने अनुमान किया कि ये लोग आर्यसमाजी हैं, और जूनागढ़ के नवाब के अब तक ख़ैरख़्वाह बने हुए हैं। तब भला, ये भगवान् सोमनाथ की भक्ति का आनंद कैसे पा सकते हैं?

पश्चिम तरफ़ खिड़की थी, जिससे सोमनाथ का मंदिर दिखाई पड़ रहा था। उधर दृष्टि जाते ही श्रद्धा और भक्ति से, उनका शरीर रोमांचित हो उठा।

उन्होंने खिड़की के सामने खड़े होकर, दोनो हाथ जोड़कर,

मस्तक झुकाकर भगवान् सोमनाथ को प्रणाम किया। फिर बड़ी देर तक भग्न मंदिर पर दृष्टि गड़ाए उसे देखते रहे।

आँखें थक जाने से उन्होंने पलक मारी। अरे, यह क्या ? भग्न मंदिर अदृश्य हो गया था, और उसके स्थान पर पर्वताकार एक विशाल शिवालय खड़ा था ! उसमें पूर्ण जीवन के चिह्न प्रकट हो रहे थे। निश्चय ही इस समय दिन है, और वह सो नहीं रहे हैं। एक विचित्र आश्चर्य और श्रद्धा से उनका शरीर काँप उठा, रोमावलियाँ खड़ी हो गईं और वह चीखने लगे—"मिस्टर सोलंकी ! मिस्टर सोलंकी !"

मिसेज सोलंकी दौड़ी हुई उनके कमरे में आईं। उनके पीछे मिस्टर सोलंकी आए। नौकर-चाकर भी आए।

ज्ञानचंद ने चिल्लाकर कहा—"वह रहे भगवान् सोमनाथ। लीजिए, दर्शन कीजिए।"

सब खिड़की के बाहर मंदिर की ओर देखने लगे। जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। सबने एक अद्भुत दृश्य देखा।

पहले तो उन्हें वह दृश्य बहुत ही स्पष्ट दिखाई पड़ा, फिर क्रमशः धुँधला पड़ने लगा, और अंत में भग्न मंदिर के सिवा कुछ न रह गया !

"कहीं कुछ भी तो नहीं है।" मिस्टर सोलंकी ने कहा।

"हाँ, अब तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता। परंतु जब हम इस कमरे में आए, हमने कुछ देखा था।" मिसेज सोलंकी बोलीं।

"कुछ नहीं, भावना का चित्र था। आजकल हम सबके सामने एक प्रश्न है। महमूद गजनी के आक्रमण से पूर्व मंदिर कैसा था, हमारी कल्पना भावावेश में वही दृश्य हमारे सामने उपस्थित करती है। परंतु जब हम विचार करना आरभ करते हैं, वह दृश्य मिट जाता है।"

मिस्टर सोलंकी हँसते हुए कमरे के बाहर चले गए। ज्ञानचंद ने रात को जो दृश्य देखा था, कह सुनाया।

मिसेज सोलंकी ने उसे सत्य माना। बोलीं—"सोमनाथ के मंदिर के खँडहर में रात को जो जाता है, वह वहाँ कुछ अद्भुत दृश्य अवश्य देखता है। मैंने तो कुछ नहीं देखा-सुना। परंतु अनेक लोग स्तुति-गान सुनने, नृत्य देखने की बात कहते हैं। शंकरजी भूतनाथ भी तो कहलाते हैं। अगर भूत हैं, या होते हैं, तो इस मंदिर में उनका दिखाई पड़ जाना कोई आश्चर्य नहीं।"

थोड़ी देर चुप रहकर मिसेज सोलंकी फिर बोलीं—"खैर, मैं तुम्हारे लिये वस्त्र आदि भेजवाए देती हूँ। तुम नहा-धोकर आदमी बनो, और अगर तुम्हारे अनुभवों में सच्चाई है, तो उसका आभास हम सबको होगा।"

वह कमरे के बाहर चली गईं।

ज्ञानचंद ने हजामत बनवाई, स्नान किया, मिसेज सोलंकी द्वारा भेजवाए स्वच्छ वस्त्र पहने। इसी बीच में भोजन तैयार हुआ। मिस्टर सोलंकी ने उन्हें अपने साथ बैठाकर

खिलाया, और पाकिस्तान के जन्म के समय की कष्ट-कथाएँ सुनीं।

भोजन के बाद ज्ञानचंद दिन में उस भग्न मंदिर को देखने के इरादे से निकले, और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गए।

आज काम बंद था, और चारों तरफ़ सन्नाटा छाया हुआ था। ज्ञानचंद मंदिर के अंदर घुसे, तो दिन-दहाड़े अपने ही पैरों की आहट से चौंकने लगे, और उन दिनों की कल्पना करने लगे, जब यह मंदिर पूर्ण यौवन पर रहा होगा।

घंटों मंदिर में वह घूमते रहे। रात्रि में जिस अद्भुत सुंदरी से उनकी भेंट हुई थी, एक प्रकार से वह उसे ढूँढ़ते रहे। अंत में उत्तर की ओर एक भग्न दीवार पर, जिस पर चढ़ने के लिये सीढ़ियाँ बनी थीं, वह थककर बैठ गए।

सहसा क्या देखते हैं कि उनके सामने वही सुंदरी खड़ी हुई मुस्किरा रही है!

"आप कौन हैं ?" ज्ञानचंद ने चौंककर पूछा।

"डरिए नहीं, मैं आपको कोई हानि नहीं पहुँचाऊँगी।"

ज्ञानचंद का भय कुछ कम हुआ। बोले—"कृपा करके पहले बताइए कि आप कौन हैं ?"

"मैं उन हज़ारों देवदासियों में से एक की प्रेतात्मा हूँ, जो महादेव सोमनाथ की आरती के समय मंदिर में नृत्य किया करती थीं।"

"आप उस समय थीं, जब महमूद ग़ज़नी ने मंदिर पर आक्रमण किया था ?"

"मैं यहीं थी, जहाँ इस समय आप बैठे हैं।"

'ग़ज़नी किधर से आया था ?"

"उधर देखिए।"

ज्ञानचंद ने उत्तर की ओर देखा। वह सिहर उठे। ग़ज़नी की फ़ौज चली आ रही थी। उन्हें लगा, जैसे किसी ने इतिहास की इस घटना को उनके सामने सिनेमा के दृश्यों की भाँति उपस्थित कर दिया हो।

"उस समय आप क्या कर रही थीं ?"

"इधर देखिए।"

सहसा ज्ञानचंद के कानों में मृदंग और करताल की मधुर ध्वनि गूँज उठी।

वह जीवित ही १०वीं शताब्दी में पहुँच गए थे। उन्होंने देखा, वह मंदिर के परकोटे पर बैठे हैं और उधर से ग़ज़नी की फ़ौज आ रही है, इधर मंदिर के परकोटे पर नाच-गान हो रहा है।

नाचनेवालियों में वह युवती भी है, जिसने अभी अभी बातें की हैं। उन्होंने देखा, उनके गिर्द अनेक लोग बैठे हैं, जो मृदंग और करताल बजा रहे हैं।

निश्चय ही वह प्रेतों के बीच में आ गए हैं। वह बड़े ज़ोर से चीख़े, और मंदिर के बाहर, दीवार के नीचे, आ गिरे।

---

श्रीमती चंद्रकुँअरि सोलंकी, अपने पति श्रीमान् हरदेवसिंह सोलंकी के साथ, वेरावल जाने के लिये मोटर पर आकर सवार हुई।

वहाँ सोमनाथ के नव निर्माण के लिये जो ट्रस्ट बना था, उसकी बैठक होनेवाली थी। ये लोग उसके सदस्य नहीं थे, तथापि आज की बैठक में भाग लेने के लिये विशेष रूप से आमंत्रित थे।

मोटर थोड़ी ही दूर गई थी कि एक झटके के साथ रुक गई। ड्राइवर को मालूम पड़ा, मुँह पर लंबा घूँघट लटकाए एक युवती उसके पहियों के नीचे आ गई है। अतएव उसने शीघ्रता-पूर्वक ब्रेक लगाया। तुरंत ही मोटर से उतरकर उसने इधर-उधर देखा। कहा कुछ न था। वह बहुत लज्जित हुआ। चुपचाप अपनी जगह पर आ बैठा, और गाड़ी स्टार्ट करने लगा।

"क्या बात है?" सोलंकी हरदेवसिंह ने पूछा।

"जी, कुछ नहीं।" ड्राइवर ने कहा, और अपने काम में लग गया।

कुछ ही दूर चलने पर ड्राइवर को फिर वैसा ही जान पड़ा,

और उसने फिर ब्रेक लगाया। इस बार और भी झटके के साथ गाड़ी रुकी।

एकाएक श्रीमती चंद्रकुँअरि चीख उठीं—"ड्राइवर! गाड़ी रोको।"

"बात क्या है?" मिस्टर सोलंकी ने ड्राइवर की ओर देखते हुए क्रोध के स्वर में कहा।

"ओह! बिलकुल अंधा होकर चलाता है। बेचारी स्त्री बाल-बाल बच गई!"

"कौन स्त्री! कैसी स्त्री! क्या हो गया है तुम लोगों को?" सब लोग नीचे उतरे। दूर तक चारों तरफ देखा। कहीं कुछ न था। श्रीमती चंद्रकुँअरि सोलंकी का हृदय धक-धक कर रहा था।

मिस्टर सोलंकी ने ड्राइवर से कहा—"जाओ, पीछे बैठो।" और फिर अत्यंत स्नेह-पूर्वक श्रीमती सोलंकी को आगे की सीट पर बैठाकर स्वयं भी बैठे, गाड़ी चलाने लगे।

मोटर स्वच्छ और सुचिक्कन सड़क पर तैर-सी रही थी। दक्षिण की ओर समुद्र गर्जन कर रहा था, और फेनिल लहरों को छूती हुई, सुदूर से आती हुई हवा बहुत ही सुहावनी प्रतीत हो रही थी।

श्रीमती सोलंकी का चित्त कुछ शांत हुआ। वह बोलीं—"जीवन में प्रथम बार आज मैंने भूत देखा!"

"तुम्हारे मन को उस दक़ियानूस शरणार्थी ने शंकालु बना दिया है, और अब तुम पग-पग पर भूत देखोगी।"

"ड्राइवर ने भी तो देखा ! क्यों ड्राइवर ?" श्रीमती सोलंकी ने उसकी ओर घूमकर पूछा।

ड्राइवर ने स्वीकृति-सूचक सिर हिलाया। मिस्टर सोलंकी के सामने वह बहुत बोलता न था।

"इसमें कोई आश्चर्य नहीं।" मिस्टर सोलंकी ने कहा—"मैं बंबई में था। एक मेस्मरेज़म का खेल दिखानेवाला आया। उसने दर्शकों से पूछा—'क्या वक्त है ?' सबने अपनी घड़ियाँ देखीं और कहा—'दो।' परंतु वह चिल्लाया—'नहीं साहब ! आप सब लोग भूल कर रहे हैं, अभी तो केवल १२ बजकर १० मिनट हुए हैं। ज़रा फिर से अपनी घड़ियाँ देखिए।' सबने देखा। मैंने भी देखा। १२ बजकर १० मिनट था। मेस्मरेज़म का खेल दिखानेवाले ने विजेता की भाँति स्टेज पर टहलकर सबका अभिवादन किया, और बोला—'आप सब मेरे बहकावे में आ गए। अपनी घड़ियाँ एक बार फिर देखिए। आप लोगों ने पहले ठीक कहा था। वास्तव में अभी दो ही बजा है।'"

मिस्टर सोलंकी कहते गए—"सो अगर तुम दोनों ने एक साथ भूत देखा, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। इस प्रकार का भ्रम मस्तिष्क के ग्रहणशील हो जाने पर एक साथ कइयों को हो सकता है। परंतु भूत निर्बल मस्तिष्क के विकार के सिवा और कुछ नहीं। और, यह उचित नहीं कि हम लोग आज के युग में इस प्रकार के मूर्खता-पूर्ण विश्वासों को आश्रय दें।"

मिस्टर सोलंकी के बंबई में देखे गए मेस्मरेजम के खेल के उदाहरण से मिसेज सोलंकी का भूतों के प्रति विश्वास और भी दृढ़ हो गया। उनके सामने ज्ञानचंद की खिड़की से दिखाई पड़नेवाला सोमनाथ का कल्पना-निर्मित मंदिर एक बार फिर साकार हो उठा। उन्होंने देखा, ज्ञानचंद उस मंदिर के शिखर पर चढ़ने की चेष्टा कर रहा है, और अपने पैरों का संतुलन गँवा बैठने के कारण धम से नीचे आ गिरा है। वह बड़े जोर से चीख उठीं—"हाय !"

मिस्टर सोलंकी ने मोटर की चाल धीमी कर दी—"क्या हो गया है तुमको ?"

मिसेज सोलंकी का हृदय धक-धक कर रहा था। बड़ी मुश्किल से उन्होंने कहा—"स्वामी ! मोटर वापस सोमनाथ-मंदिर तक ले चलो।"

"क्या बात है ?"

"मुझे लगता है, वह शरणार्थी युवक ......" उनका गला रूँध गया।

"हाँ हाँ, ज्ञानचंद। कहो, क्या बात है ?"

"मंदिर पर चढ़ रहा था, सो नीचे आ गिरा है। उसे अस्पताल पहुँचाना जरूरी है।" मिसेज सोलंकी ने घबराहट के स्वर में कहा।

मिस्टर सोलंकी ने मोटर सोमनाथ के मंदिर की ओर घुमा

दी। अपनी पत्नी के मस्तिष्क से इस प्रकार का भ्रम दूर करना उन्होंने सबसे अधिक आवश्यक समझा।

परंतु मंदिर के पास पहुँचने पर मिस्टर सोलंकी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने देखा कि ज्ञानचंद सचमुच मंदिर से नीचे गिरा पड़ा है।

"लो, तुम्हारी भविष्यवाणी सच निकली।" उन्होंने अपनी पत्नी से, दाँव में हारे हुऐ जुआड़ी की-सी हँसी हँसकर, कहा।

वह सोचने लगे—"भूत होते हों या नहीं, पर ऐसी कोई शक्ति जरूर है, जो मनुष्यों को भूतों के अस्तित्व में विश्वास करने के लिये विवश करती है।"

मिसेज़ सोलंकी कुछ बोलीं नहीं। अपनी विजय पर न तो उन्हें गर्व हुआ न हर्ष। भगवान् सोमनाथ को मन-ही मन प्रणाम करती हुई वह ज्ञानचंद के निकट गईं। वह बेहोश पड़े थे। प्रत्यक्ष चोट कहीं न आई थी। उन्होंने उनके मस्तक पर हाथ फेरा, वह गर्म था। उनका हृदय धकधका रहा था, आँखें बंद थीं।

"अभी जान बाक़ी है। चलो, तुरंत अस्पताल ले चलो।" वह चिल्लाईं।

ज्ञानचंद को पीछेवाली सीट पर लिटाकर तीनों आदमी आगे बैठे। मिस्टर सोलंकी ने तेज़ी से मोटर चलाई। सोमनाथ में कोई ऐसा अस्पताल न था, जहाँ ऐसी आकस्मिक चोटों की

चिकित्सा होती हो। अतएव सीधे वेरावल-बंदर की ओर मोटर को तीर-सा छोड़ दिया।

समुद्र उसी प्रकार गर्जन-तर्जन कर रहा था। लहरें उसी प्रकार महत्त्वाकांक्षी नर की उमंग की भाँति उठ और गिर रही थीं। वायु उसी प्रकार लहरों पर पग धरता हुआ तट के मार्ग पर ताजगी बिखेर रहा था। ज्ञानचंद ने आँखें खोल दीं।

"कहीं चोट तो नहीं आई?" मिसेज सोलंकी ने अत्यंत मृदु स्वर में पूछा।

ज्ञानचंद को लगा कि प्रेत उसे मंदिर की दीवार से गिराकर अब किसी अज्ञात लोक को उड़ाए लिए जा रहे हैं। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि अब मैं भय को हृदय में स्थान न दूँगा। मैं कुटुंब-परिवार, साथी-संगी, मित्र-पड़ोसी, सभी से शून्य, जीवित ही प्रेत बन गया हूँ। मैं प्रेतों के बीच में अब निर्भय विचरण करूँगा। यही होगा न कि वे सब मुझे मार डालेंगे। मृत्यु से अधिक भयानक और क्या हो सकता है। पर संसार के सभी जीवों को मृत्यु का स्वागत करना पड़ता है, जिसके लिये मैं तैयार हूँ। तब भय कैसा?

इस प्रकार अपना कर्तव्य निर्धारित कर लेने पर मिसेज सोलंकी के प्रश्न के उत्तर में उसने पूछा—"पहले यह बताइए कि आप कौन हैं?"

"मैं, मुझे तुम इतनी जल्दी भूल गए। मैं···।"

"शक्ल से तो आप मिसेज़ सोलंकी प्रतीत होती हैं। परंतु शायद आप कोई प्रेतात्मा हैं।"

"नहीं-नहीं शरणार्थी युवक! मैं वही हूँ, जो तुम मुझे समझ रहे हो। आज मैंने भी प्रेत देखा है।" और मिसेज़ सोलंकी ने जो दृश्य देखे थे, कह सुनाए।

ज्ञानचंद ने कहा—"भगवान् सोमनाथ को धन्य है कि आज उन्होंने मेरी रक्षा कर ली। बड़ी ऊँचाई से गिरा था। पर मैंने जो कुछ देखा है, उसका वर्णन करूँ, तो कोई विश्वास न करेगा।"

"क्या मैं समझूँ कि आपको कोई विशेष चोट नहीं लगी?" मिस्टर सोलंकी ने सबका ध्यान भग्न करते हुए पूछा।

"नहीं-नहीं, बिलकुल नहीं। दीवार में कुछ निचाई पर एक छोटा-सा पीपल उगा था। मेरे हाथ उसकी डाल पड़ गई। उसे मैंने पकड़ लिया। पर डाल टूट गई। इस प्रकार दो क़िस्तों में मैं नीचे गिरा, और सिवा चंद छुरेटों के मुझे कोई चोट नहीं आई। परंतु मैं भय-त्रस्त हो उठा था कि ज्यों-का-त्यों पड़ा रहा। हिलने-डुलने या आँख खोलने का साहस न हुआ।"

फिर उसने सामने लहराते हुए सागर की ओर संकेत करके कहा—"ओह! समुद्र के ऊपर से आनेवाली हवा कितनी शांति प्रदायक होती है। इसके मधुर स्पर्शों से मेरा चित्त सुव्यवस्थित हो गया, और मैंने अपनी आँखें खोलीं। स्वप्न में

भी आशा न थी कि आँख खोलूँगा, तो आप लोग दिखाई पड़ेंगे। आह! इसी प्रकार यदि रत्ना भी दिख जाती।"

यह अंतिम वाक्य वह कह तो गया, परंतु इसके लिये उसे अब संकोच होने लगा।

मिस्टर सोलंकी बोले—"जो दृश्य मंदिर में तुमने देखा है, क्या हम सबको भी दिखा सकते हो?"

"मैं कैसे वादा करूँ। आप सब लोग मेरे साथ चलें, वहाँ बैठें, शायद दिखाई पड़ जाय।"

वेरावल आ गया था। परंतु अब अस्पताल जाने की जरूरत न थी। मिस्टर सोलंकी सबको लिए हुए उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ सोमनाथ-मंदिर के नवनिर्माण के लिये बनाए गए ट्रस्ट की मीटिंग हो रही थी।

मिस्टर सोलंकी ने मीटिंग में पहुँचकर, सभापति की आज्ञा से, आज दिन की सारी घटनाएँ कह सुनाईं, और ज्ञानचंद का सबसे परिचय कराया।

इत्तिफ़ाक़ से उनमें एक महाशय प्रेत विद्या-विशारद थे। उन्होंने इन समस्त घटनाओं को पूर्ण रूप से सत्य स्वीकार किया, और कहा—"यदि सदस्यगण आज अर्द्धनिशा में उनके साथ मंदिर के खँडहर में चलें, तो वह वहाँ प्रेतों का आह्वान करके उन पेचीदा प्रश्नों का उत्तर मालूम कर सकते हैं, जो आज मंदिर के पुनरुद्धारकर्ताओं के सामने हैं। परंतु एक शर्त है, कोई सज्जन डरें न।"

"यदि कोई डरा, तो क्या होगा ?" मिसेज सोलंकी बोलीं।

"प्रेत अंतर्धान हो जायँगे, और डरनेवाला गिरकर, बीमार होकर या और प्रकार से अपनी हानि कर सकता है। साथ ही हमारे उद्देश्य को भी असफल बना सकता है।"

मीटिंग १२ बजे रात के लिये स्थगित कर दी गई। प्रेत-विद्या-विशारद ने प्रेतों के आह्वान की क्रिया में प्रयुक्त होने के लिये जो-जो सामग्री आवश्यक बताई, वह एकत्र करके ट्रस्ट के दफ़्तर में रख ली गई, और निश्चय हुआ कि ११ बजे सब लोग मिस्टर सोलंकी के सोमनाथवाले नवीन गृह में पहुँच जाय। वहाँ से साथ ही चलेंगे।

मिस्टर और मिसेज सोलंकी ज्ञानचद के साथ सोमनाथ वापस आ गए।

वहाँ उन्होंने देखा, एक स्वस्थ, सुडौल शरीर का नवयुवक साधु लबी जटा बढ़ाए, तन में भस्म लगाए, कोपीन पहने, त्रिशूल लिए द्वार पर खड़ा है।

मोटर रुकते ही बोला—"सोलंकी, तेरी जय हो! भगवान् सोमनाथ तेरी रक्षा करें।"

"यह क्या बला है ?" मिस्टर सोलंकी ने कहा।

"प्यारे !" मिसेज सोलंकी बोलीं—"देश में नया युग आरंभ हो रहा है! आज एक हजार वर्ष बाद भगवान् सोमनाथ फिर अपनी शक्ति प्रकट करनेवाले हैं। कौन जाने,

सोलंकी-वंश में उत्पन्न होने के कारण तुम्हें उस भू प्रदेश का राजा घोषित किया जाय, जो अब तक जूनागढ़ के नवाब के अधिकार में था। आखिर इसके वास्तविक स्वामी तो तुम्हीं हो। और ये साधु-संन्यासी प्रभु-प्रेरित-से तुम्हारे पास इसीलिये आ रहे हों। सोलंकी कुल की परपरा के अनुसार इन आगंतुकों का स्वागत करो।"

पत्नी की ये अर्थ-भरी बातें श्रीहरदेवसिह सोलकी ने सुनीं, तो गर्व से सहस्रबाहु की भाँति झूम उठे। उन्हें भूल गया कि वह आर्यसमाजी हैं। उन्हें भूल गया कि स्वामी दयानंद नाम के कोई ऋषि इसी युग में भारत में हुए हैं, जिन्होंने अंध-परंपरा का महल ढहाया है, और ज्ञान तथा तर्क का प्रकाश फैलाया है। उन्हें लगा कि वह महाराज हरदेवसिंह जू देव सोलकी हैं। उनके मस्तक पर रत्न-जटित मुकुट है। उनके कानों में सुनाई पड़ने लगा कि चारों तरफ से एक ही आवाज़ आ रही है—महाराजा हरदेवसिंह सोलंकी की जय!

वह साधु उन्हें साक्षात् महादेव शंकर-सा प्रतीत हुआ। उन्होंने आगे बढ़कर, दोनो हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर उसे प्रणाम किया। बोले—"पधारो महाराज! पधारो।"

दरबान ने खास बैठक खोल दी। कोपीन-धारी साधु अत्यंत आदर के साथ एक सोफे पर बैठाया गया। मिस्टर सोलंकी ने उसके सामनेवाले सोफे पर बैठते हुए पूछा—"कहिए महाराज, क्या आज्ञा है?"

"तुम्हारे हित की बात है। जो मैं कहूँ, करोगे?"

मिस्टर सोलंकी को लगा कि सोलहो आने जूनागढ़ के नवाब की गद्दी पर बैठने का समय आ गया है। एक विचित्र प्रकार के स्वाभिमान से उनका हृदय दमक उठा। एक विचित्र प्रकार की गंभीरता उनके मुख-मंडल पर विराज गई। बोले—"महाराज! पहले सुनूँ भी तो।"

"तुम्हारे हित की बात है। खूब सोच लो। मैं जो कहूँ, अगर वह करते हो, तो तुम ..."

"अपना हित कौन नहीं चाहता? महाराज आज्ञा दें।"

"खूब सोच लो।"

"आप कहें भी तो।"

"अच्छा, तो सबको हटा दो। यह हित की बात है। जब तक कार्य की सिद्धि न हो जाय, किसी को कानोंकान खबर न होनी चाहिए।"

मिस्टर सोलंकी को कहना नहीं पड़ा। सब लोग अपने आप उठकर वहाँ से चले गए। कमरा अंदर से बंद कर लिया गया। दरवाजे, खिड़कियाँ सब बंद कर ली गईं।

तब उस साधु ने अपने झोले में से एक यंत्र निकाला और कहा—"यह लीजिए, इसे अपने कान से लगाइए। यह नवीनतम मॉडल का रेडियो-टेलीफ़ोन है। लीजिए, कान से लगाइए। शीघ्र ही आपको सुपरिचित स्वर सुनाई पड़ेगा।"

मिस्टर सोलंकी ने समझा, शायद सरदार पटेल दिल्ली से

उनसे बातें करेंगे। शायद उनसे पूछेंगे कि क्या आप जूनागढ़ के महाराजा कहलाना पसंद करेंगे ?

उन्होंने बड़ी उमंग से रेडियो-टेलीफ़ोन को अपने कान से लगाया। साधु ने यंत्र में एक बटन दबाया। कोई पाँच मिनट बाद आवाज़ आई—"हलो ! मिस्टर सोलंकी।"

"हाँ-हाँ, मैं ही हरदेवसिंह सोलंकी हूँ, कहिए।"

"आपने मेरी आवाज़ पहचानी ?"

"कुछ-कुछ। आप सरदार पटेल हैं, जो दिल्ली से बोल रहे हैं।"

"नहीं-नहीं, मैं हूँ नवाब जूनागढ़। कराची से बोल रहा हूँ।"

मिस्टर सोलंकी के हाथ से टेलीफ़ोन छूट पड़ा। उनका सारा शरीर काँप उठा। उनका दिल बैठने लगा, जैसे किसी ने सीने में गोली मार दी हो।

साधु ने रेडियो-टलीफ़ोन उठाकर पुनः मिस्टर सोलंकी को पकड़ाया—"घबराइए नहीं साहब, आपके हित की बात है। लीजिए, नवाब साहब से बातें कीजिए।"

मिस्टर सोलंकी ने बहुत अनिच्छा-पूर्वक, जैसे कोई जान-बूझकर विष पान करे, टेलीफ़ोन कान से लगाया। नवाब कह रहा था—"तुम मेरे प्रति हमेशा वफ़ादार रहे हो। तुम्हारा ख़ानदान मेरे ख़ानदान का सदा भक्त रहा है। इससे मैंने तुम्हें याद किया है। बोलो, मेरी सहायता करोगे ? तुम्हें

सोमनाथ और आस-पास का इलाक़ा मिलेगा। सोमनाथ के मंदिर में मूर्ति की स्थापना और उसकी पूजा करने की इजाज़त दी जायगी। तुम्हें मेरी मदद करनी ही है। बोलो, करोगे ?"

मिस्टर सोलंकी के मन में आया, टेलीफ़ोन पटक दें। पीढ़ी-दर-पीढ़ी नवाब की ग़ुलामी करते आने के कारण उनकी गति उस चूहे-सी हो गई थी, जो बिल्ली के चंगुल में पूर्ण रूप से पड़कर त्रस्त हो गया हो। बोले—"कहिए। यहाँ तो हिंद-सरकार की फ़ौज पहुँच गई है। उसके मुक़ाबले में मैं क्या कर सकता हूँ ?"

नवाब की आवाज़ आई—"सुनो। घबराओगे और पीछे क़दम हटाओगे, तो तुम एक बड़ा अवसर खो दोगे। मैं तुम्हें कभी माफ़ नहीं करूँगा। और, तुम्हारी सज़ा जानते हो, क्या होगी ?"

मिस्टर सोलंकी काँप उठे। उन्हें तत्काल ही सुनाई पड़ा—"मौत ! लेकिन अगर तुमने समझ से काम लिया, और दग़ा न की, तो तुम्हें ख़ुश कर दूँगा। हाँ, तो सुनो। पाकिस्तान बहुत जल्द हिंदुस्तान पर हमला करेगा। ज़मीन से, समुद्र से, आसमान से। मैं जूनागढ़ का नवाब फिर बनूँगा। समय आने पर तुम्हें इनाम, पदवी और अच्छी जागीर दिलाऊँगा। तुम्हें सिर्फ़ एक काम करना है—जो आदमी तुम्हारे पास साधु-वेश में है, उसे तुम साधु कहकर सम्मानित करो, और समय-समय पर वह जो सहायता माँगे, उसे दो। वह पाकिस्तान का

जासूस है। और हाँ, इसकी खबर किसी को न हो। समझे!?"

"समझा।" मिस्टर सोलंकी ने बहुत बेचैनी के साथ कहा।

साधु ने उनके हाथ से रेडियो-टेलीफोन ले लिया, और नवाब से बड़ी देर तक बातें करता रहा। उसके बाद बोला—"अल्लाह चाहेगा, तो सब काम ठीक हो जायगा। नवाब का आप पर बहुत बड़ा भरोसा है। कहिए, आप उनका साथ देंगे न?"

मिस्टर सोलंकी बोले—"यह एक नाजुक सवाल है। कम-से-कम मुझे आज रात सोचने का मौक़ा दीजिए।"

"अच्छी बात है। तो मैं चला। कल इसी वक्त आऊँगा। पर हाँ, किसी को खबर न हो।"

"नहीं होगी।"

दरवाज़ा खोल दिया गया। साधु-वेपधारी पाकिस्तानी जासूस हर-हर महादेव कहता हुआ जाने ही वाला था कि तीन-चार मोटरें वहाँ आ पहुँचीं। प्रेत-विद्या-विशारद महाशय ने पूछा—"मिस्टर सोलंकी! क्या बाबाजी भी चलेंगे?"

"कहाँ बच्चा?" साधु बोला।

"सोमनाथजी का दर्शन करने।"

"मैं तो मंदिर में रहता ही हूँ।" कहता हुआ वह साधु बोला—"पर सोलंकी कहें, तो चल सकता हूँ।"

"महाराज, आपने लंबी यात्रा की है। आज जायँ, विश्राम करें। फिर कभी।"

हर-हर महादेव कहता हुआ वह चला गया।

लोगों ने पूछा—"यह कौन था ?"

"प्रेत !" मिस्टर सोलंकी बोले।

"क्या कहा—प्रेत !" मिसेज सोलंकी ने पूछा। उनके रोंगटे खड़े हो गए। वह दौड़कर, अपने पति से सटकर खड़ी हो गईं। उन्होंने देखा, उस प्रेत से क्षण ही भर की मुलाक़ात के बाद मिस्टर सोलंकी पीले पड़ गए हैं। पत्नी ने पति को अपनी बाहों में आबद्ध करते हुए कहा—"भगवान् सोमनाथ, इनकी रक्षा करो।"

प्रेत-विद्या-विशारद महाशय बोले—"पहले क्यों न बताया, मैं इस प्रेत को बाँधता।"

मिस्टर सोलंकी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उनका हृदय बैठा जा रहा था। उन्होंने क्या आशाएँ की थीं, और भाग्य ने उन्हें कहाँ पटका !

"मिस्टर सोलंकी, आप चाहें, तो न चलें, यहीं आराम करें।" वह महाशय बोले—"पर हम सबका अधिक रुकना ठीक नहीं है।"

"नहीं, यहाँ अकेले पड़े रहना मेरे लिये और मुश्किल होगा। चलिए।"

"कुछ खा तो लो।" मिसेज सोलंकी बोलीं।

"नहीं, इस वक्त भूख बिलकुल नहीं है।"

और सब लोग उस अर्द्ध निशा में सोमनाथ के विशाल खँडहर में प्रेतों से साक्षात्कार करने के इरादे से चल पड़े।

---

प्रेतों के आह्वान की क्रिया में प्रयुक्त होने के लिये जो आवश्यक सामग्री ये लोग साथ लाए थे, वह प्रेत-विद्या-विशारद सज्जन के आदेशानुसार खँडहर के मध्य में रख दी गई। उनकी विविध प्रकार की सुगंधियों से सारा वातावरण एक विचित्र रहस्य-पूर्ण लोक-सा प्रतीत होने लगा।

प्रेत-विद्या-विशारद सज्जन ने आग जलाई, उसमें कुछ सुगंधित द्रव्यों को छोड़ा, और जोर-जोर से मंत्र-पाठ करने लगे।

एकाएक बीच में रुककर वह बोले—'बस, अब प्रेतों के प्रकट होने में देर नहीं है। मैं आप लोगों को फिर सावधान करता हूँ कि किसी को डरने की जरूरत नहीं है। आप सब जानते हैं कि काला साँप कितना भयानक होता है। यों अचानक कहीं मिल जाय, तो आप उससे भय-त्रस्त हो उठेंगे, परंतु वही यदि किसी कुशल सपेरे के वश में हो, तो आप शौक़ से उसकी फुफकारों का आनंद ले सकते हैं। शेर कितना भयानक होता है, यह भी आप जानते हैं, परंतु वही शेर जब किसी सरकस में नाट्य करता है, तब हम सब शौक़ से, बहुत क़रीब से, उसका खेल देखते हैं। क्योंकि हम जानते हैं, वह सरकस

के संचालकों के हाथ में है, और हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। इसी प्रकार यों कहीं प्रेत मिल जाय, तो आप उससे भयभीत हो सकते हैं, परंतु यदि प्रेत-विद्या-विशारद उसे आह्वान करके आपके सामने प्रकट करे, तो उस प्रेत से आपको डरने की आवश्यकता नहीं।"

प्रेत-विद्या-विशारद ने यद्यपि ये बातें इसलिये कही थीं कि कोई भयभीत न हो, तथापि उन सबके रोंगटे खड़े हो गए, और वे एक दूसरे के और भी क़रीब चिपटकर बैठ गए।

प्रेत-विद्या विशारद ने अग्नि प्रज्वलित की, जिससे मंदिर की दीवारें रात्रि के उस अंधकार में और भी शून्य और भयावनी हो उठीं। फिर उसने प्रज्वलित अग्नि को सुगंधित द्रव्यों से ढक दिया, जिससे प्रकाश तो सर्वथा लुप्त हो गया, परंतु सफ़ेद धुएँ का एक बादल-सा उनके गिर्द छा गया। प्रेत-विद्या-विशारद ने कहा—"उधर देखिए, सामने, इस धुएँ के पार।"

सब लोगों ने आश्चर्य-चकित होकर एक अद्भुत दृश्य देखा। एक तरफ़ से एक नर्तकी छम-छम करती हुई आई, और दूसरी तरफ़ से एक ब्राह्मण युवक आया।

लोगों को जान पड़ा, जैसे वे किसी सिनेमा-हॉल में बैठे हों, और सामने परदे पर जीवित मानव-सी छायाचित्र-लिपियाँ बन और बिगड़ रही हों। क्रमशः यह दृश्य और भी स्पष्ट हुआ। ब्राह्मण युवक का चेहरा भय-त्रस्त और गंभीर, परंतु दृढ़

प्रतीत हुआ। वह नर्तकी भी अत्यंत दुःख-पूर्ण मुद्रा में दिखाई पड़ी।

प्रेत-विद्या-विशारद ने अग्नि में और भी सुगंधित वस्तुएँ डालीं। धुआँ और भी सघन हुआ, तथा उसके साथ वह दृश्य भी और अधिक स्पष्ट हुआ।

प्रेत-विद्या-विशारद ने अत्यंत धीमे, पर स्पष्ट स्वर में कहा—"सुनिए, कुछ आप लोगों को सुनाई पड़ता है ?"

किसी ने कुछ कहा नहीं, पर सबके कान उन स्वरों को पकड़ने के लिये सक्रिय प्रतीत हुए। क्रमशः ये आवाजें उन्हें स्पष्ट सुनाई पड़ने लगीं—

"मृणालिनी ! लो, यह कटार लो। मैं चला।"

"आर्यपुत्र ! तुम स्वयं अपने हाथ से मुझे मारकर जाओ।"

"नहीं-नहीं, शायद हम-तुम फिर मिलें।"

"अच्छा अच्छा, पर यह कटार ?"

"रक्षा का कोई उपाय न होने पर इसका उपयोग करना।"

लोगों ने देखा, दोनों प्रेतात्माएँ दो तरफ़ से आती हैं, और क्रमशः इसी प्रकार बातें करके फिर पृथक्-पृथक् दिशाओं में चली जाती हैं। और फिर आती हैं, और फिर चली जाती हैं।

प्रेत-विद्या-विशारद ने सुगंधित द्रव्य अग्नि पर डाला। इस बार बजाय धुआँ आने के अग्नि प्रज्वलित हो उठी, और वह दृश्य लुप्त हो गया। फिर उसने दूसरे प्रकार की सुगंधित वस्तुएँ

डालीं, जिनसे धुआँ उठा, और वह दृश्य पुनः सामने आया। क्रमशः यही नाटक घंटों होता रहा।

सब लोगों ने यह दृश्य देखा। सब लोगों ने ये बातें सुनीं। परंतु सोलंकी हरदेवसिंह को न तो कुछ दिखाई पड़ा और न कुछ सुनाई पड़ा। जब धुआँ उठता, तब उन्हें अपनी ही प्रतिमूर्ति दिखाई पड़ती और उन्हें सुनाई पड़ता—"आपने मेरी आवाज़ पहचानी? मैं हूँ नवाब जूनागढ़, कराची से बोल रहा हूँ।"

सबों ने जो कुछ देखा-सुना, उसे बताया, और सबको विश्वास हुआ कि जो कुछ देखा-सुना, वह प्रत्यक्ष था। परंतु मि० सोलंकी ने जो कुछ देखा-सुना, उससे वह बहुत ही चिंतित हो उठे।

प्रेत-विद्या-विशारद ने बताया—"प्रेत आपस में प्रायः एक ही बात बार-बार युगों तक कहते-सुनते रहते हैं, और वे न तो ऊबते हैं, और न थकते हैं। ये बातें प्रायः वे होती हैं, जो उनके मानव-जीवन के अंतिम क्षणों में उनके मुख से निःसृत होती हैं। यहाँ जो दृश्य आपने देखा, वह अपने आपमें पूर्ण है। जान पड़ता है, इस ब्राह्मण युवक और नर्तकी में प्रेम रहा हो। यह भी हो सकता है कि दोनो पति-पत्नी रहे हों। यह भी हो सकता है कि उनका विवाह न हुआ हो, पर उनका प्रेम विवाह के निकट पहुँच रहा हो। बहुत संभव है, रक्षा का कोई उपाय शेष न देख यह ब्राह्मण युवक अपने प्राण बचाने या

लड़ मरने के इरादे से अपनी प्रियतमा को कटार देकर मंदिर के बाहर जा रहा हो कि यदि मंदिर के इस भाग तक ग़ज़नी के सिपाही आ जायँ, तो वह अपने पेट में कटार भोंक ले।"

कुछ-न-कुछ लोग तो उस समय निश्चय ही जीवित बचे होंगे, परंतु शायद उनमें से किसी को यह न सूझा कि मंदिर के अंदर हुए इस भीषण नर-संहार की कहानी लिख दे, जिससे आनेवाली पीढ़ी को इसका कुछ हाल मालूम हो। उस समय की घटित घटनाओं को इतिहास-वेत्ता निश्चय ही बता सकते हैं, परंतु प्रेत-विद्या-विशारद मृतात्माओं का स्थान-स्थान पर आह्वान करके उन सूत्रों को संकलित कर सकते हैं, जिनसे समूची घटना सामने आ सकती है।

"क्या प्रेत हमारे प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं ?"

"हाँ, परंतु सीधे नहीं, किसी मध्यस्थ के द्वारा।"

श्रीमती चंद्रकुँअरि के पूछने पर जब प्रेत-विद्या-विशारद ने इस प्रकार जवाब दिया, तब ज्ञानचंद ने कहा—"परंतु मैंने तो जो प्रेतात्मा देखी थी, वह मुझसे बातें करती थी।"

"हाँ, कुछ प्रेत ऐसे भी होते हैं, जो मनुष्यों के निकट आ जाते और उनसे बातें करते हैं। परंतु यह तभी होता है, जब कोई मनुष्य अकेला हो, और बिलकुल न डरे। उसके डरते ही प्रेत अदृश्य हो जाता है।"

ज्ञानचंद ने अपना अनुभव सुनाया, और वह स्थान दिखाया, जहाँ उसे प्रथम और द्वितीय दिन वह प्रेतात्मा दिखाई

पड़ी थी। उन स्थानों पर भी प्रेत-विद्या-विशारद ने अग्नि प्रज्वलित की, और सुगंधित धूम्र फैलाकर आह्वान किया, पर कुछ दिखाई न पड़ा।

पूर्व स्थान पर सब लोग पुनः आए, और उन्हें पुनः वही दृश्य दिखाई पड़ा, और वही वार्तालाप सुनाई पड़ा।

सोलंकी हरदेवसिंह ने कहा—"मैं पहले भी कहता था, और अब भी कहता हूँ कि मस्तिष्क के ग्रहणशील होने पर प्रेत देखने का भ्रम एक साथ कइयों को हो सकता है, परंतु भूत निर्बल मस्तिष्क के विकार के सिवा और कुछ नहीं है।"

"तो क्या आप समझते हैं कि हम सबका मस्तिष्क निर्बल है?" प्रेत-विद्या-विशारद ने कहा।

"बेशक!" मि० सोलंकी ने उत्तर दिया—"आपने इस खँडहर में रात्रि के अंधकार में अपनी पूजा की विविध सामग्रियों द्वारा एक रहस्य-पूर्ण वातावरण निर्मित करके हम सबके मस्तिष्क को ग्रहणशील बना दिया और फिर जो आपने चाहा, वह हम सबने देखा, और जो आपने चाहा, वह हम सबने सुना। यह एक मैस्मरेज़म का-सा खेल आपने हमें यहाँ लाकर दिखाया, परंतु मेरा ख़याल है कि यह खेल तो आप हमें हमारे घर में भी दिखा सकते थे।"

श्रीमती चंद्रकुँअरि सोलंकी ने पति के कंधे को दबाकर कहा—"परंतु स्वामी, आपने भी तो कुछ देखा और सुना। हो सकता है, दृढ़ मस्तिष्क होने के कारण आपने हम सबकी

अपेक्षा कम देखा और सुना हो। परंतु कुछ तो जरूर ही देखा।"

"जरूर देखा, परंतु वह मेरे ही निर्बल मस्तिष्क का छाया-चित्र था। जरूर सुना, परंतु वह मेरी ही भयभीत आत्मा की आवाज थी। जो दृश्य आप लोगों ने देखा मैंने उससे सर्वथा भिन्न दृश्य देखा। परंतु उनका मनोवैज्ञानिक कारण भी मैं जानता हूँ। वह चूँकि सर्वथा निजी प्रश्न है, अतएव घर चलने पर मैं तुमसे उसकी चर्चा करूँगा।"

बाक़ी सब लोग प्रेत विद्या-विशारद के इतने अधिक प्रभाव में आ गए थे कि उन्होंने न तो मि० सोलंकी की बातों को कोई महत्त्व दिया, और न उन पर कोई ध्यान दिया।

श्रीमती सोलंकी को इस बात का दुःख रहा कि उनके पति ने प्रत्यक्ष देखी हुई बातों को भी अस्वीकार किया। उन्हें लगा कि वह नास्तिकवादी होते चले जा रहे हैं, जो सोलंकी-कुल की मर्यादा के विरुद्ध है। तथापि उन्होंने उनका गंभीर और चिंतित मुख देखकर उन पर अपने तर्कों का और कँटीला प्रहार उचित न समझा। पर हाँ, उन्होंने उन प्रेत विद्या-विशारद महोदय से पूछा— जी, आपने तो कहा था कि प्रेतों का आह्वान करके हम उन पेचीदा प्रश्नों का उत्तर मालूम कर सकते हैं, जो मंदिर के पुनरुद्धारकर्ताओं के सामने हैं, परंतु ऐसा कोई दृश्य तो सामने नहीं आया।"

"हाँ, यह हमारा दुर्भाग्य है! परंतु अभी मैं हताश नहीं

हूँ। कल यहाँ आकर मैं उस प्रेतात्मा को प्रकट करने की चेष्टा करूँगा, जिसे ज्ञानचंद ने देखा है, और किसी मध्यस्थ के द्वारा उससे बातें भी करूँगा। आज तो यह संभव नहीं हो सकता।"

दूसरे दिन और भी जल्दी आने का इरादा करके सब लोग वापस लौट आए, और अपने-अपने घर विश्राम करने चले गए।

मि० सोलंकी अपने बिस्तर पर करवटें बदलने लगे। अर्ध-निद्रित अवस्था में वह देखते कि पाकिस्तानी जासूस उनके हाथ में रेडियो-टेलीफोन पकड़ाकर कहता है—"लीजिए, नवाब जूनागढ़ से बात कीजिए।" और वह चौंक-चौंक उठते।

श्रीमती सोलंकी ने कई बार उन्हें जगाया और पूछा कि वह क्या सपना देख रहे हैं?

मि० सोलंकी ने किसी से क़तई ज़िक्र न करने की आज्ञा देकर श्रीमती सोलंकी से पाकिस्तानी जासूस की सारी कथा कह सुनाई। श्रीमती सोलंकी ने कहा—"इसमें चिंता की कौन बात है? यह तो स्पष्ट है कि चाहे जैसा बड़ा प्रलोभन हो जूनागढ़ क्या, चाहे सारे विश्व का राज्य मिलने का प्रश्न हो, हम पाकिस्तान की जासूसी कदापि नहीं कर सकते। सदियों की गुलामी के बाद स्वाधीन होनेवाले अपने प्यारे देश भारत के प्रति हम विश्वासघात नहीं कर सकते, भले ही हमारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँ। इसमें चिंता की कौन बात? परंतु

प्यारे, विना अपना कोई भेद उसे दिए हम उससे रत्ना के उद्धार में सहायता ले सकते हैं। अपना काम निकालो, और उसे बेवक़ूफ़ बनाओ।"

"परंतु यदि नवाब जूनागढ़ फिर यहाँ आए, तो ?"

"तो प्यारे, सोमनाथ के भग्न मंदिर में हमने आज जो दृश्य देखा है, वह हमारी रक्षा करेगा। तुम मेरे हाथ में एक कटार देकर शत्रु से लड़ने चले जाना, और मैं यथा-समय उसका उपयोग करूँगी। और फिर, यदि भारत के दुर्भाग्य से पाकिस्तान का आक्रमण सफल हुआ, तो हम जीकर ही क्या करेंगे ? उस जीवन से प्रेत बनकर इस प्रकार की अनंत काल तक बातें करते रहना कहीं श्रेयस्कर होगा।"

श्रीमती सोलंकी बहुत ही विवेक-पूर्ण और तत्काल किसी निर्णय पर पहुँचनेवाली नारी थीं। निराशा के क्षणों में अपने पति के हृदय में उन्होंने अनेक बार आशा की बिजली चमकाई थी। आज फिर पत्नी की बातों से पति को ढाढ़स हुआ। वह उन्हें उन त्यागमयी सीता-सी प्रतीत हुईं, जिनका साथ पाने के कारण राम को चौदह वर्ष का वनवास बहुत सहज प्रतीत हुआ था। उन्होंने पत्नी के दोनो हाथों को अपने हाथों में लेकर और मजबूती से पकड़कर कहा—"मेरे दुःख-सुख की साथिन, तुम धन्य हो ! मैं वैसा ही करूँगा, जैसा तुम कहती हो।"

और वह सो गए।

प्रातःकाल उनकी आँखें खुलीं, तो उन्होंने देखा, लंबी जटा बढ़ाए, तन में भस्म लगाए, हाथ में त्रिशूल लिए 'हर-हर महादेव' कहता हुआ वह पाकिस्तानी जासूस उनके घर में प्रवेश कर रहा है।

बड़े आदर के साथ उन्होंने कहा—"जनाब, मैंने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया है। जूनागढ़ के नवाब साहब को मैं निराश नहीं करूँगा। मैं राजपूत हूँ, यह अपने कार्यों से उन्हें सिद्ध करके दिखा दूँगा। आप दिल खोलकर मुझसे कहें कि मैं क्या करूँ? पर मेरी एक शर्त जरूर है। मेरी भांजी रत्ना, जो पाकिस्तान में क़ैद है, मेरे पास शीघ्र-से-शीघ्र पहुँचा दी जानी चाहिए।"

"सब हो जायगा। नवाब साहब को जब यह पता चला था, तभी उन्होंने रत्ना को कराची में बुलवा मँगवाया था। वह उनके आश्रम में सुरक्षित है, और आपके पास निश्चय ही आ जायगी।"

श्रीमती सोलंकी, जो परदे की आड़ से ये बातें सुन रही थीं, एकाएक प्रकट हुईं, और हाथ जोड़कर बोलीं—"महाराज! मेरी रत्ना कहाँ है?"

मि० सोलंकी ने कहा—"जनाब, यह मेरी पत्नी हैं। क्या मैं इनसे आपका परिचय कराऊँ?"

"नहीं, नहीं, साधुओं को स्त्री से क्या काम?"

फिर उस बने हुए साधु ने कहा—"बेटी! धैर्य धरो।

तुम्हारी रत्ना तुम्हें शीघ्र मिलेगी। जाओ, घर के अंदर जाओ, और हमारी बात में विघ्न मत डालो।"

"हत्यारे, समझूँगी तुम्हें!" मन-ही-मन कहती हुई श्रीमती सोलंकी अंदर चली गईं।

उस जासूस ने कहा—"पाकिस्तान ने हिंदुस्तान पर आक्रमण की पूरी तैयारी कर ली है। आक्रमण के पूर्व बंगाल से वह हिंदुओं को मार-पीटकर निकाल देना चाहता है और चाहता है कि इसके जवाब में हिंदुस्तान में हिंदू भी मुसलमानों को मारें। सो मि० सोलंकी, यदि आप इस समय जूनागढ़ में हिंदू-मुसलमान दंगा करा दें, तो नवाब साहब आपसे बहुत खुश होंगे। पर हाँ, एक बात और है। आक्रमण के पहले पाकिस्तान खास-खास मुसलमानों को—जैसे निजाम हैदराबाद, नवाब भोपाल, क़ासिम रिज़वी और ऐसे ही औरों का—पाकिस्तान निकाल ले जाना चाहता है। जब तुम मुसलमानों पर मार-काट शुरू करोगे, तब वे एक शरणार्थी-कैंप में जमा होंगे। उसी कैंप में ये खास मुसलमान भी सबकी नजर बचाकर पहुँचा दिए जायँगे, जिससे सब सुरक्षित पहुँच जायँ। उसके बाद ही हिंदुस्तान पर हमला शुरू हो जायगा, और तब ......।"

मि० सोलंकी धैर्य से पाकिस्तानी जासूस की ये बातें सुनते रहे और अंत में बोले—"सब करूँगा, परंतु पहले रत्ना मुझे मिल जानी चाहिए।"

"उसकी फ़िक्र मत करो। रत्ना नवाब के साथ हिंदुस्तान में आएगी।"

मि॰ सोलंकी ने कहा—"उधार में मैं विश्वास नहीं करता। 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' का सौदा मुझे पसंद है। रत्ना मुझे पहले मिलनी चाहिए, तभी मैं शेष बातों पर ग़ौर कर सकता हूँ।"

"और नहीं तो ?"

"अभी टेलीफ़ोन उठाकर भारत-सरकार को ख़बर करता हूँ कि आप पाकिस्तानी जासूस हैं !"

"अच्छा-अच्छा।" कहकर वह जासूस बाहर जाने लगा।

मि॰ सोलंकी में न-जाने कहाँ से अद्भुत साहस आ गया। उन्होंने दौड़कर सदर दरवाज़े को बंद कर दिया, और उस जासूस से कहा—"रेडियो-टेलीफ़ोन लगाइए। इसी समय नवाब साहब से कहिए, मेरी रत्ना को पहले हवाई जहाज़ से भारत भेजवाएँ।"

पाकिस्तानी जासूस एक आराम-कुर्सी पर किंकर्तव्यविमूढ़-सा बैठ गया, और उसे अपने पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकती-सी जान पड़ी। उसने मि॰ सोलंकी की ओर एक संदेह-भरी दृष्टि से देखा, और अपनी झोली से पिस्तौल निकालकर तानी। उसके मन में आया कि उन्हें मारकर फंदे के बाहर निकल जाय।

---

( ५ )

"धड़ाम! धड़ाम!" एक के बाद एक, पिस्तौल से दो गोलियाँ छूटीं।

श्रीहरदेवसिंह सोलंकी ने, जो सदर द्वार बंद कर चुके थे, पीछे घूमकर देखा। साधु-वेशधारी पाकिस्तानी जासूस के हाथ में पिस्तौल थी, और ज्ञानचंद अपने दोनो हाथों से उसके पिस्तौलवाले हाथ को मजबूती से पकड़े हुए थे। पाकिस्तानी मि० सोलंकी को अपनी पिस्तौल का निशाना बनाने का अब भी असफल प्रयास कर रहे थे। और, ज्ञानचंद उसके हाथ से पिस्तौल छीनने में सफल न हो सकने के कारण केवल यह प्रयत्न कर रहे थे कि मि० सोलंकी को चोट न आने पाए। दोनो में इस तरह गुत्थमगुत्था हो रहा था, जैसे दो खूँख्वार भेड़िए लड़ रहे हों।

फ़र्श पर बिछा हुआ सुचिक्कन और मुलायम क़ालीन उलट-पुलट गया था। कुर्सियाँ इधर-उधर हो गई थीं। छोटी मेज़ें और उन पर रक्खी हुई सजावट की चीज़ें दोनो के धक्के से खड़खड़ करती हुई कमरे में इधर-उधर फैल रही थीं।

पिस्तौल की आवाज़ और कमरे में भैंसों के लड़ने की-सी आहट सुनकर श्रीमती सोलंकी और घर के अन्य नौकर-चाकर दौड़े हुए आए।

जिधर से वे लोग आए थे, दीवार थी। परंतु अब उस जासूस ने देखा कि वह वास्तव में बड़ द्वार था, जो भीतर से इस तरह पुता-सा था कि शेष दीवारों का एक अंग जान पड़ता था। इस द्वार की बनावट इस तरह थी कि इस कमरे में बैठा आदमी घर के आँगन की तरफ़ नहीं देख सकता था, परंतु भीतर के लोग देख सकते थे कि बैठक में कौन हैं, और क्या हो रहा है।

श्रीमती सोलंकी की समझ में तत्काल सारी परिस्थिति आ गई। कमरे में, एक कोने में, गौतम बुद्ध की एक छोटी-सी काँसे की मूर्ति रक्खी थी। उन्होंने उसे अपने दोनों हाथों से लपककर उठा लिया, और उस पाकिस्तानी जासूस के सिर पर जोर से दे मारा। एक चीख़ के साथ वह एक ओर को लुढ़क पड़ा। ज्ञानचंद उसके हाथों को अब भी मजबूती से पकड़े हुए थे। अब श्रीमती सोलंकी ने उसकी उँगलियों को मरोड़कर उसके हाथ से पिस्तौल छीन ली।

नौकरों को आदेश दिया—' देखते क्या हो ? रस्सी लाओ, हत्यारे को फ़ौरन बाँधो।"

कहने-भर की देर थी, श्रीमती सोलंकी की आज्ञाओं का तत्काल पालन किया गया और वह पाकिस्तानी जासूस एक कोने में बाँधकर डाल दिया गया।

श्रीमान सोलंकी जो आश्चर्य-चकित किंकर्तव्यविमूढ़-से खड़े यह दृश्य देख रहे थे, जैसे कोई भयानक स्वप्न देखने के

बाद जग-से उठे, और उस जासूस की ओर ज़रा आगे बढ़कर बोले—"आदाब अर्ज़ है, मियाँजी !"

वह पाकिस्तानी जासूस अपनी इस दयनीय स्थिति की कोई परवा न करता हुआ गुस्से से इस तरह ऐंठा हुआ प्रतीत हो रहा था, मानो अभी इसी क्षण सब पर प्रलय ढा देगा।

ज्ञानचंद ने कहा—"सोमनाथ की जय !"

उनके अंतिम शब्द के साथ सबने स्वर मिलाया, और कमरा विचित्र हर्षोन्माद के स्वर से भर गया।

रस्सियों से बँधा हुआ, कोने में पड़ा हुआ वह पाकिस्तानी जासूस दाँत पीसकर बोला—"तुम्हारा सोमनाथ मुसलमानों के पैरों-तले एक नहीं, सैकड़ों बार रौंदा गया है। उसका नाम लेते तुम्हें शर्म नहीं आती ?"

"शर्म तुझे आनी चाहिए, जो छोटा मुँह बड़ी बात करता है ! सोमनाथ तो उसी शक्ति का नाम है, जिसे मुसलमान अल्लाह कहते हैं।"—श्रीमती सोलंकी ने कहा।

"अल्लाह अलग चीज़ है, 'बुत' अलग।"

ज्ञानचंद ने उस पाकिस्तानी जासूस के झोले में हाथ डालकर एक छोटी-सी किताब निकाली—"यह क्या है ?" उन्होंने पूछा।

"बदमाश ! उसे नापाक न कर। वह क़ुरान शरीफ़ है।"

ज्ञानचंद ने कहा—"यदि मैं इसे जलाऊँ या पैरों-तले रौंदूँ

या चीर-फाड़ डालूँ, तो क्या वे विचार, जो इस पुस्तक में लिखे हैं, नष्ट हो जायँगे ?"

पाकिस्तानी जासूस कुछ बोला नहीं—उसकी तरफ़ घूरता रहा। ज्ञानचंद कहते ही गए—"जैसे पुस्तक को नष्ट कर देने से हम उसमें लिखित विचारों को नष्ट नहीं कर सकते, वैसे ही मूर्ति को खंडित कर देने से देवता खंडित नहीं होता। मूर्ति ईश्वर के साक्षात्कार का वैसे ही एक साधन है, जैसे पुस्तक उसमें वर्णित विचार तक पहुँचने का साधन है। महमूद ग़ज़नी ने भगवान् सोमनाथ की मूर्ति का वैसे ही अपमान किया है, जैसे आज मैं तुम्हारे झोले से निकालकर तुम्हारे इस क़ुरान शरीफ़ का कर सकता हूँ। पर नहीं, मैं इतना बड़ा मूर्ख नहीं हूँ, जितना बड़ा ग़ज़नी था। मैं जानता हूँ, एक पुस्तक को नष्ट कर देने पर दूसरी पुस्तक तैयार की जा सकती है। इसी प्रकार जो मूर्ति तोड़कर हिंदुओं की ईश्वरीय उपासना को नष्ट करना चाहते थे, उन्हें सोचना चाहिए था कि नई मूर्ति भी बन सकती है। आज हज़ार वर्ष से भी ऊपर हो गए, जब मुसलमानों ने मूर्तियाँ तोड़नी शुरू की थीं, परंतु तुम तो जासूस हो, तुम्हें मुझसे ज़्यादा पता होना चाहिए कि हिंदुस्तान में आज घर-घर ईश्वर की मूर्तियाँ विराजमान हैं। और, यह देखो सोमनाथ की मूर्ति फिर स्थापित होने जा रही है।"

"स्थापित होने दो, इसको तोड़ने के लिये फिर नया ग़ज़नी पैदा होगा !" पाकिस्तानी जासूस बोला।

"नए पागलपन का नया इलाज भी होगा।" मि० सोलंकी ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"पर पहले यह बताओ कि तुम्हारे साथ अब हम क्या व्यवहार करें ?"

"बदमाश को क़त्ल करके इसी घर के अंदर कहीं दफ़न कर दो, और किसी को कानों‌कान ख़बर न हो।" श्रीमती सोलंकी ने कहा।

"नहीं, हमारा यह काम नहीं है। यह सरकार का काम है कि इसे क्या सज़ा दी जाय। मैं तो इसे सरकार के हवाले कर देना चाहता हूँ।"

"परंतु अगर यह हमारी रत्ना को हमसे मिलाने में सहायता दे, तो मेरी राय है कि इसे सहीसलामत पाकिस्तान लौट जाने दिया जाय।" श्रीमती सोलंकी ने कहा।

"नहीं, हज़ार बार नहीं।" वह जासूस बोला।

मि० सोलंकी ने उसके और पास बैठकर, उसके दोनो कानों को अपने दोनो हाथों से ज़ोर से मसलकर कहा—"बदमाश! मैं तुझे तब तक अपने घर से न निकलने दूँगा, जब तक मेरी रत्ना मुझे वापस न मिल जायगी। अगर तेरी कोई क़ीमत है, तो पाकिस्तान को उसे चुकाना पड़ेगा।"

मि० सोलंकी ने नौकरों को हुक्म दिया कि उसे एक कमरे में बंद कर दिया जाय, और इस बीच में मित्रों से राय ली जाय कि अब क्या करना चाहिए।

मि० सोलंकी के एक दूर के रिश्तेदार चौधरी मलखानसिंह,

जिन्होंने आई० एन० ए० में बड़ा नाम किया था, और नेताजी सुभाषचंद्र बोस के साथ मलाया और सिंगापुर में अँगरेजों को हिंदुस्तान से बाहर खदेड़ भगाने के लिये बड़ा सैनिक संगठन किया था, बुलाए गए।

उन्होंने आते ही उस पाकिस्तानी जासूस के तमाम काग़ज-पत्रों का निरीक्षण किया। मालूम हुआ, उसका ध्येय भारत में केवल ऐसी जमीन तैयार करना है कि जूनागढ़ का नवाब फिर हिंदुस्तान में आकर अपनी रियासत पा सके, और अगर नवाब नहीं, तो उसका बेटा जूनागढ़ की गद्दी पर बैठ सके।

उसके थैले में अनेक ऐसे पत्र मिले, जिन्हें नवाब ने अपने दोस्तों को लिखा था, और इस बात पर जोर दिया था कि वे कोशिश करें कि हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच में शीघ्र ही जो समझौता होनेवाला है, उसके परिणाम-स्वरूप नवाब जूनागढ़ भी हिंदुस्तान लौट सकें।

"अगर सिर्फ़ इतनी बात थी, तो नवाब ने रेडियो-टेलीफ़ोन पर मुझे ऐसी धमकी क्यों दी, और इस प्रकार का लालच क्यों दिया?" सोलंकी हरदेवसिंह ने कहा।

"भाई साहब!" चौधरी मक्खनसिंह बोले—"नवाब जानता है कि आप केवल दो ही बातों से प्रेरित हो सकते हैं—भय या लालच। पर वह नहीं जानता कि हिंदुस्तान के सभी आदमियों का दृष्टिकोण भी बदल गया है।"

"परंतु ख़ैर", चौधरी मक्खनसिंह कहते गए—"आप लोग

सब्र करें। मैं आज ही अपने जासूसी कौशल से इस पाकिस्तानी जासूस को अपनी मुट्ठी में लाऊँगा, और इसी की मार्फ़त रत्ना को वापस बुलाऊँगा। आप लोग देखते जाइए।"

पाकिस्तानी जासूस के कमरे की चाभी चौधरी मलखानसिंह ने ले ली।

हरदेवसिंह सोलंकी से उन्होंने कहा कि यह अपने नौकर-चाकर-सहित अपने वेरावल-बंदरवाले मकान में चले जायँ।

मलखानसिंह वेरावल-बंदर की एक नाटक-कंपनी में उसी समय गए और पुलिस के कप्तान और सिपाहियों की वर्दियाँ नाटक करने के बहाने किराए पर ले आए। स्वयं कप्तान बने, और कुछ लोगों को सिपाही बनाकर मकान के अंदर इस तरह खड़ा किया कि जान पड़े, जैसे सारा मकान पुलिस के क़ब्ज़े में है।

पाकिस्तानी जासूस बाहर कुछ देख नहीं सकता था। अपनी जल्दबाज़ी पर वह पछता रहा था। अपने प्राणों के संबंध में भी उसे शंका हो रही थी। पाकिस्तान में जाकर बसे हुए अपने बाल बच्चों का भी उसे ध्यान आ रहा था। उधर उसकी कोठरी के बाहर जो कुछ नाटक हो रहा था, उससे उसकी चिंता बढ़ गई थी। कभी कभी तो वह किसी भी शर्त पर इस क़ैद से छुटकारा पाने की बात सोच बैठता था।

इस प्रकार असमंजस की घड़ियाँ युगों के समान भारी प्रतीत हुईं, और उसे प्रतीत होने लगा कि इस कोठरी का

दरवाज़ा अब शायद ही खुले। सहसा उसके कानों में आवाज़ आई—"ए जमादार बलवंतसिंह! तुम्हारी ड्यूटी यहाँ है। इस कोठरी में खतरनाक क़ैदी है। सावधानी से पहरा देना।"

थोड़ी देर बाद आवाज़ आई "ए बलवंतसिंह! यार, एक बीड़ी तो पिलाओ। क़ैदी को ताकना-न ताकना बेकार है, क्योंकि कप्तान साहब मुसलमान हैं। देख लेना, आखिर में उसे छोड़ ही देंगे।"

"लो भाई, लो, बीड़ी पिओ। हमसे क्या? हम तुम तो कभी अफ़सर बन नहीं सकते। पाकिस्तान बना, मगर यहाँ मुसलमानों का वैसा ही जोर बना है।"

"आख थू! यार, कैसी बीड़ी रखते हो? बड़ी कड़वी है! सुना है, नवाब जूनागढ़ फिर यहाँ आनेवाले हैं। कहाँ के सोमनाथ, कहाँ के हम-तुम।"

"चुप-चुप! कप्तान साहब आ रहे हैं।"

पाकिस्तानी जासूस अंदर से यह सब वार्ता सुनता है, खटपट-खटपट की आवाज़ भी सुनता है, मन-ही-मन कहता है—"या अल्लाह! अगर सचमुच कप्तान मुसलमान है। तो··"

"सावधान! दाएँ घूम। आराम कर।"

पाकिस्तानी जासूस अपनी कोठरी में बैठा हुआ अनुभव करता है कि कप्तान साहब आए और चले गए। जरूर वह मुझसे बात करना चाहते होंगे, पर शायद हिंदू सिपाहियों के सामने सही-सही बातें न हो सकें।

प्रतीक्षा में कुछ क्षण और बीतते हैं। एकाएक दरवाजा खुलता है। कमरे के अंदर बाहर लगा बटन दबाने से प्रकाश हो जाता है। पाकिस्तानी जासूस देखता है कि कप्तान साहब उसके कमरे में खड़े हैं।

"हलो महमूद!" कप्तान साहब ने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया।

"अरे, यह मेरा नाम भी जानते हैं!" उसने कप्तान साहब से हाथ मिलाया।

"महमूद, मैंने दरवाजा खोल दिया है। मैं मुसलमान हूँ, मुसलमान को क़ैद नहीं कर सकता। तुम जाओ, इसी वक्त भाग जाओ।"

पाकिस्तानी जासूस बाहर निकला। मकान के दूसरे हिस्से से आवाज आई—"ठहर, कौन जाता है?"

पाकिस्तानी जासूस कुछ भय कुछ आशा से वहीं खड़ा रह जाता है—"हुजूर की मेहरबानी है! पर मेरा सामान, जिसमें जरूरी काग़जात हैं, और रेडियो-टेलीफ़ोन है, दिलाने की मेहरबानी फ़रमाएँ।"

"मुझे सब मालूम है। सिपाही इकरामहुसैन सब लिए हुए तुम्हें मकान के बाहर, दाहनी ओर के मोड़ पर, मिलेगा। उससे ले लेना। जाओ, जल्दी जाओ।"

"हुजूर ने मेरा नाम कैसे जाना?"

"लो, पढ़ो।"

उसी गुप्त संकेत-लिपि में, जिसमें इस जासूस के पास तार आते थे, कप्तान साहब के पास एक तार आया था। लिखा था—"जासूस महमूद जूनागढ़ में रहेगा। अगर किसी थाने में किसी वजह से गिरफ़्तार हो जाय, तो आप, जो कि एक बड़े अफ़सर और पाकिस्तान के खैरख्वाह हैं, उसकी जरूर मदद करें।"

पाकिस्तानी जासूस को पूरा भरोसा हो गया कि कप्तान मुसलमान हैं, और उसकी सब तरह मदद करने को तैयार हैं।

तब तो उसने दिल खोलकर उनसे बातें कीं, और पूछा कि क्या करें?

कप्तान साहब बोले—"भाई, सुनो। यहाँ सोलंकी का बड़ा जोर है। खबर यह है कि यह सोलंकी ही जूनागढ़ की गद्दी पर बैठाया जायगा। लेकिन यह पूरा बेवक़ूफ़ है। कुछ जानता नहीं, और न-जाने कौन रत्ना है, जिसके लिये दीवाना है। अगर किसी तरह यह साबित हो सके कि यह भी पाकिस्तान की जासूसी करता है, तो मैं इसे गिरफ़्तार कर लूँ, और तब नवाब साहब का रास्ता साफ़ हो जाय।"

"हुज़ूर जो बताएँ, मैं करने को तैयार हूँ।"

"अच्छा, फिर सुनो। मेरा एक दोस्त है अनवर। बड़ा चलता-पुरज़ा है। उसे मुसलिम यात्री बनाकर उसकी बीवी-सहित मैं पाकिस्तान भेजता हूँ। तुम नवाब साहब को टेलीफ़ोन करो कि रत्ना को उसके साथ कर दें। दोनों

पाकिस्तान से रत्ना को लेकर आएँ। मैं उन्हें गिरफ़्तार कर लूँगा, और उनसे बयान दिला दूँगा कि वे सोलंकी की ओर से हिंदुस्तान के ख़िलाफ़ जासूसी करते हैं, और इस काम में सोलंकी की भांजी, जो पाकिस्तान में रहती है, उनका साथ देती है। रत्ना को बाहर ही-बाहर तुम्हारे हवाले कर दूँगा, और तुम उसे लेकर फिर पाकिस्तान चले जाना। इधर मैं सोलंकी को जेल में डाल दूँगा।"

महमूद को जान पड़ा कि वह दूसरा महमूद ग़ज़नी पैदा हुआ है। बोला—"हुज़ूर बहुत ठीक फ़रमाते हैं। बिलकुल ऐसा ही करूँगा।" फिर रत्ना के साथ पाकिस्तान की लंबी यात्रा करने को वह लालायित हो उठा।

कप्तान को सलाम करके वह मकान के बाहर हो गया। कप्तान साहब के बताए अनुसार दाहनी ओर के मोड़ पर उसे सिपाही इकरामहुसैन मिला, और उसको सब सामान देकर, इक्के पर बैठालकर रातोरात वेरावल ले गया।

सोलंकी हरदेवसिंह को चौधरी मलखानसिंह ने कोई एक बजे रात आकर जगाया। बोले—"दो आदमी तैयार रक्खो। एक तो अनवर बनेगा, दूसरा उसकी बीवी। कल मैं उस जासूस की मार्फ़त पाकिस्तान से हवाई जहाज़ मँगवाऊँगा। दोनो उसी में जायँगे, और रत्ना को कराची से लेकर वापस आ जायँगे। वह बदमाश पाकिस्तानी जासूस अब सर्वथा मेरी मुट्ठी में है। मैं जो कहूँगा, वह करेगा।"

सोलंकी हरदेवसिंह का वेरावल का मकान रातोरात इस तरह सजा दिया गया, जैसे किसी मुसलमान रईस का मकान हो।

इस मकान के मालिक मियाँ अनवरहुसैन घोषित किए गए। यह अनवरहुसैन और कोई नहीं, हमारे सुपरिचित सोलकी हरदेवसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीरतनलाल नागर हैं। लीजिए, बेगम अनवरहुसैन भी आ गईं। यह और कोई नहीं, शरणार्थी युवक ज्ञानचंद हैं, जो मुसलिम स्त्री की बहुमूल्य पोशाक पर बोरका ओढ़े सचमुच बेगम प्रतीत हो रहे हैं।

सबेरा होते ही कप्तान साहब इस मकान में दाखिल हुए, और अनवरहुसैन तथा बेगम अनवरहुसैन का परिचय महमूद से कराया। जब बोरके के छेद से अपनी बाँहों को उलझारते हुए बेगम अनवरहुसेन ने कनखियों से उस पाकिस्तानी जासूस के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की, तब उसके उत्साह का ठिकाना न रहा। वह बड़े हर्ष से रेडियो-टेलीफ़ोन पर उन सबको सुनाकर नवाब जूनागढ़ से बातें करने लगा। पाँच ही मिनट में सब तय हो गया। नवाब जूनागढ़ रत्ना को दूसरे ही दिन भेजने पर राज़ी हो गए और जासूस को खास तौर से हिदायत थी—"देखना, रत्ना किसी भी तरह सोलंकी के हाथ न पड़ने पाए।"

"हर्गिज़ नहीं हुज़ूर!" उस पाकिस्तानी जासूस ने कहा, और रेडियो टेलीफ़ोन रख दिया। फिर मि० अनवरहुसैन

और उनकी बीवी की ओर इशारा करते तथा विचित्र प्रकार से आँखें मटकाते हुए बोला—"मूर्ति-पूजक, मूर्ख हिंदू! ये इतने बड़े मुल्क की हुकूमत हर्गिज नहीं सँभाल सकते।"

पाकिस्तान से स्पेशल परमिट के साथ अनवरहुसैन और उनकी बेगम को लेने के लिये हवाई जहाज आ गया। बेगम अनवरहुसैन बंबई की पुलिस को काफ़ी रिश्वत देकर तलाशी से बचीं।

जब हवाई जहाज आकाश में पहुँचा, और ज्ञानचंद ने नीचे भारत की शस्य श्यामला मही देखी, तो उनकी आँखें सजल हो गईं। मन ही-मन उन्होंने भारत-माता के इस भव्य रूप को प्रणाम किया, और कहा—"भगवान् सोमनाथ! मेरी यात्रा सफल करो। मैं रत्ना को लेकर शीघ्र ही स्वदेश लौटूँ। भगवान् सोमनाथ! भगवान् सोमनाथ!"

यह सोमनाथ की रट उसके हृदय की धक धक के साथ मिलकर जैसे एक हो गई थी।

---

सोलंकी हरदेवसिंह के प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीरतनलाल नागर, जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, मियाँ अनवरहुसैन के वेश में हवाई जहाज़ से कराची में उतरे। उनके पीछे बोरक़ा ओढ़े, उनकी बीवी का स्वाँग बनाए, शरणार्थी युवक ज्ञानचंद उतरे।

इसके पहले भी इन लोगों ने कराची देखी थी। परंतु आज की कराची दूसरी थी। सड़कों पर कहीं भी कोई हिंदू या सिक्ख चलता न दिखाई पड़ता था। जिन विशाल भवनों और दूकानों में हिंदू या सिक्ख रहते थे, उनमें हिंदुस्तान के मुसलमान अधिकार जमाए थे, और उन सबों के चेहरे पर घोर उदासी छाई थी। जान पड़ता था, जैसे वे किसी बड़े जेलखाने में पहुँच गए हैं! जिस सुख की कल्पना से प्रेरित होकर वे पाकिस्तान पधारे थे, उसका कहीं आभास न था।

कराची शहर की एक विशाल सड़क से उनकी मोटर गुज़र रही थी। एकाएक बोरक़े के अंदर से ज्ञानचंद चीख़ से उठ—"अरे, यह क्या हुआ?"

रतनलाल नागर अर्थात् मियाँ अनवरहुसैन ने उनका हाथ दबाया, जिसका मतलब था - 'चुप।"

ड्राइवर ने पीछे घूमकर देखा—"जी, वह गाँधी की मूर्ति है। आँधी से गिर पड़ी है।"

मियाँ अनवरहुसैन मुस्कराए—'यह पाकिस्तान है। यहाँ ऐसी आँधी चलनी ही चाहिए।"

"जी, लेकिन आप तो हिंदुस्तान से आ रहे हैं। सुना है, सिर्फ इसी बात पर वहाँवालों ने मुसलमानों का सफ़ाया करना शुरू कर दिया है।"

"ऐसी तो कोई बात नहीं है। कम-से-कम हमारे जूनागढ़ में नहीं है। वहाँ तो हिंदू मुसलमान, दोनो नवाब साहब के आने की बाट देख रहे हैं।"

"हो सकता है। लेकिन क्या आपको मालूम नहीं कि सोमनाथ का मंदिर फिर से बनने जा रहा है? यह क्या है? क्या यह मुसलमानों को चिढ़ाना नहीं है?"

"अजी, कहाँ का सोमनाथ! उसकी चर्चा मैंने भी सुनी है। लेकिन यह तभी तक है, जब तक नवाब साहब वहाँ नहीं पहुँच जाते।"

"नवाब जूनागढ़! क्या आप समझते हैं कि ऐसा शानदार नवाब काफ़िरों के देश में वापस जायगा।? हर्गिज़ नहीं। हमारे नवाब साहब निज़ाम नहीं हैं, जिन्हें धन दौलत का मोह हो। वह काफ़िरों की मातहता मंज़ूर करके इस्लाम की तौहीन नहीं कर सकते।"

ज्ञानचंद बोरके के अंदर से खुद बोलना चाहते थे। परंतु शब्द उठकर, उनके गले तक आकर दोबे निःश्वासों में परिणत हो जाते थे। ड्राइवर की बेतुकी बातें सुनकर उन्हें ऐसा गुस्सा

आ रहा था कि वह इस ड्राइवर को नीचे ढकेल दें, और स्वयं गाड़ी चलावें। परंतु दूसरे ही क्षण उन्हें रत्ना से मिलने की घड़ी निकट आती प्रतीत हो रही थी, और वह शांत हो उठते थे। एकाएक वह ड्राइवर चिल्लाया—"लीजिए, नवाब साहब की कोठी आ गई।"

रतनलाल नागर ने मोटर-कार के बाहर दूर तक आँखें फाड़कर देखा। उनके सामने नवाब जूनागढ़ के महल नाच गए। उन्होंने ड्राइवर को सुनाकर कहा—"या अल्लाह! अपने इस बंदे को तूने कैसे बुरे दिन दिखाए! जूनागढ़ में तो नवाब ने कभी ऐसे मकानों में पैर भी न रक्खा होगा।"

गर्द-गुबार से भरी एक सुनसान सड़क पर खड़ा वह मकान, जिसे ड्राइवर कोठी कह रहा था, आज जूनागढ़ के नवाब का निवास-स्थान था। नवाब साहब एक साधारण व्यक्ति की तरह इस कोठी में रहा करते थे। रतनलाल उनके दरबार के क़ायदों से वाक़िफ़ थे। अतएव उन्होंने आगे बढ़कर उनका अभिवादन किया। अभिवादन का वह परिचित ढंग देखकर नवाब को लगा, जैसे वह फिर जूनागढ़ में पहुँच गए हों! उन्होंने बैठने का इशारा किया, और मियाँ अनवरहुसैन एक कुर्सी पर बैठ गए। पास ही चिक टँगा था। उसकी आड़ में ज्ञानचंद, जो बोरक़ा ओढ़े थे, बैठे।

नवाब साहब ने अपने आने के बाद से अब तक का

जूनागढ़ का हाल पूछा, जिसे अनवरहुसैन ने विस्तार से बताया। फिर सोलंकी हरदेवसिंह की चर्चा चली।

"ग़द्दार है!" नवाब ने कहा—"पर मैं उसको मजा चखाऊँगा और सोमनाथ! उस नापाक जगह को लेकर मैं देखता हूँ कि काफ़ी पोलिटिकल चालें चली जा रही हैं। ख़ैर, मैं उसको भी देखूँगा। मंदिर तो वहाँ क्या बनेगा, पर हाँ, जो कुछ क़ायम है, उसको भी खुदवाकर फेंक दूँगा।"

उसके बाद रत्ना की चर्चा चली। नवाब ने एक विचित्र हँसी हँसकर कहा—"जिस अफ़सर के क़ब्ज़े में वह है, उसे मैंने बुलवाया है। वह अफ़सर बताता है कि वह किसी तरह भी हिंदुस्तान जाने को तैयार नहीं। वह उसी के साथ उसकी बीबी बनकर रहेगी, और हिंदुस्तानवाले, ख़ासकर वह सोलंकी, इस बात को भी लेकर बड़ा हंगामा मचाए हुए हैं। ख़ैर, मैंने उस अफ़सर को राज़ी कर लिया है। काफ़िर औरतों की यहाँ कमी नहीं है। रत्ना को आपके साथ वापस भेजने को वह तैयार हो गया है। मेरा तो ख़याल है, वह लड़की हम लोगों के ख़िलाफ़ नहीं जा सकती। पर आप उस पर निगाह रखिएगा।"

इधर ये बातें हो रही थीं, उधर जनानख़ाने से एक बुढ़िया नौकरानी ने आकर नवाब को सलाम किया और कहा—"हुज़ूर, वह तो हिंदुस्तान जाने को किसी तरह तैयार नहीं हो

रही है। सभी बेगमें समझाते समझाते हार गई हैं। किसी और को रत्ना बनाकर क्यों न भेज दिया जाय ?"

"ऐसा हो तो सकता है। क्यों ?" नवाब ने मियाँ अनवर-हुसैन से पूछा।

"यह तो हुजूर ही समझ सकते हैं।" अनवरहुसैन ने इस नए प्रस्ताव पर अपने मन के भाव को छिपाते हुए कहा। उधर चिक की आड़ में बैठे हुए ज्ञानवंश बेचैन हो उठे। उन्हें जान पड़ा, रत्ना अब मिलकर भी न मिलेगी। वह बहुत ही व्याकुल हो उठे। उन्होंने घबराहट में बोरक़े के भीतर से चारों तरफ़ देखना शुरू किया। नवाब की बेगमें बैठी ताश खेल रही थीं। उन्होंने इशारे से उन्हें अपने पास बुलाया। पर उनकी आँखें रत्ना को खोजने में लगी थीं। रत्ना उनमें न थी।

"न-जाने बदमाशों ने कहाँ छिपाकर रक्खा है ?" उन्होंने दीर्घ निःश्वास लिया, और मन-ही मन प्रतिज्ञा की — 'रत्ना, मैं तुम्हें बिना लिए नहीं लौटूँगा।"

इधर ये बातें हो रही थीं, उधर उस अफ़सर का भाई घबराया हुआ नवाब की कोठी में दाख़िल हुआ और बोला—"हुज़ूर, भाई साहब कमरे में मरे पड़े हैं, और वह औरत ग़ायब है !"

"अरे, यह क्या ?" नवाब के मुँह से एक चीख़ निकल गई।

मियाँ अनवरहुसैन गंभीर बने बैठे रहे। सोचा, ज़रूर रत्ना ने उसको मारकर निकल भागने की कोशिश की है। भगवान् सोमनाथ उसकी रक्षा करें।

चिक की आड़ में बैठे ज्ञानचंद ने मन-ही मन कहा—"रत्ना, तुम धन्य हो! तुमने........हाय! पर इतनी जल्दी क्यों की? अब मैं तुम्हें कहाँ ढूँढ़ूँ?"

थोड़ी ही देर में पुलिस की सरगर्मियाँ चारों तरफ़ नज़र आने लगीं।

इस घटना को नवाब जूनागढ़ ने अपने लिये एक और अपशकुन समझा।

उस समय उन्होंने मियाँ अनवरहुसैन और उनकी बीवी को बिदा किया, और शाम को मिलने के लिये बुलाया। सोचा, तब तक मैं तय कर लूँगा कि अब क्या करना चाहिए।

अनवरहुसैन और उनकी बीवी, दोनो कोठी के उस भाग में ले जाए गए, जहाँ उनके ठहरने का प्रबंध किया गया था। दोनो सोच में पड़े थे। यह तो उन्हें दृढ़ निश्चय हो गया था कि रत्ना अब ज़ालिमों के बंधन से मुक्त है। परंतु वह कब तक मुक्त रह सकती है? दोनो उसकी सहायता के लिये चिंतित थे। परंतु कैसे करें, और उसे कहाँ पाएँ?

शाम को वे नवाब साहब से मुलाक़ात करके वापस आए। कोई निश्चय नहीं हो सका कि क्या करना चाहिए। इसी बात

पर दोनो में विवाद होता रहा कि वे हिंदुस्तान लौट जायँ, या पाकिस्तान में रुककर सब क़िस्म की जोखिम उठाएँ, और रत्ना को ढूँढ़ें।

रतनलाल वापस जाने और ज्ञानचंद रुकने की बात करते थे। ये ही बातें करते-करते रतनलाल सो गए। परंतु ज्ञानचंद को नींद न आई। वह कमरे में टहलने लगे, फिर बरांडे में आ गए, और फिर बाहर सड़क पर। उनका रोम-रोम 'रत्ना! रत्ना!' का क्रंदन कर रहा था। रत्ना के लिये वह बेचैन थे। उन्होंने अपने पूरे मनोयोग से उस प्रेत-कन्या का आह्वान किया, जो उन्हें सोमनाथ के मंदिर के खँडहर में, जब वह प्रथम दिन पहुँचे थे, दिखाई पड़ी थी। उन्हें लगा, उनकी ओर जैसे कोई आ रहा है। पूर्व में चंद्रमा उदय हो रहा था। कराची शहर शुभ्र ज्योत्स्ना में स्नात शांत प्रतीत हो रहा था। स्वर्ग की परियाँ धवल अट्टालिकाओं और वृक्षों की पत्तियों पर उतरती प्रतीत हो रही थीं। पास ही समुद्र के गर्जन का स्वर सुनाई पड़ रहा था। ज्ञानचंद उस प्रेत कन्या का आह्वान करते हुए अनायास समुद्र की ओर क़दम उठा रहे थे। सहसा उन्हें जान पड़ा जैसे कोई प्रकाशमान वस्तु उनके समीप आ रही है।

"कहिए, आपने मुझे क्यों स्मरण किया?" ज्ञानचंद को सुनाई पड़ा।

उन्होंने आँखें फाड़कर देखा। वही रमणीय मूर्ति जो

उन्होंने सोमनाथ के मंदिर में देखी थी, उनके सामने खड़ी थी।

'मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ, जो आपने मुझे दर्शन दिया!"

"कहिए, मैं आपके लिये क्या करूँ ?"

ज्ञानचंद ने अपनी मनोव्यथा कह सुनाई। आज उन्हें जरा भी भय नहीं मालूम हुआ कि वह प्रेत का प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं।

वह रमणी केवल इतना ही बोली—'आइए, मेरे पीछे-पीछे, चुपचाप।"

ज्ञानचंद उस विचित्र छायामूर्ति के पीछे चलने लगे। तंग गलियों में से उन्हें निकलना पड़ा। एक मकान के सामने पहुँचकर वह मूर्ति रुक गई। ज्ञानचंद को सुनाई पड़ा—'यही मकान है।"

ज्ञानचंद ने दरवाजे पर धक्का लगाया। उन्होंने यह न सोचा कि वह एक अपरिचित स्थान में कैसा व्यवहार कर रहे हैं। उन्हें लगा, मकान के अंदर कुछ आहट सी हुई है, और कोई उनकी ओर आ रहा है। वह चुपचाप चोर की तरह खड़े थे।

क्रमशः मकान का द्वार खुला। ज्ञानचंद को लगा कोई धीरे से चोर की तरह द्वार खोलकर अंदर जा रहा है। उन्होंने उसी का अनुसरण किया।

दो कमरे लाँघने के बाद आँगन में, जहाँ चंद्रमा की रोशनी आ रही थी, ज्ञानचंद्र ने देखा कि वह रत्ना है, जो उन्हें बोरक़े में आते देख भयभीत हो उठी है। तो क्या इसने किसी और के धोखे में यह द्वार खोला है ?

उनके मुँह से निकल गया—"रत्ना ! मैं ज्ञानचंद हूँ।"

"ज्ञान ! तुम यहाँ कैसे ? मैं सपना तो नहीं देख रही हूँ ?"

ज्ञानचंद्र ने बोरक़ा हटाया—"रत्ना, लो, मुझे पहचानो। मैं ज्ञानचंद्र हूँ।"

"तुम यहाँ कैसे आए ? यह स्थान किसी को मालूम नहीं है।"

"यह रास्ता मुझे भगवान् सोमनाथ ने दिखाया है।" ज्ञानचंद्र ने कहा।

सोमनाथ का नाम सुनते ही रत्ना के मस्तिष्क में वे सब स्मृतियाँ, गंभीर घटनाएँ विद्युत् के समान चमकने लगीं, जो उसके हृदय में उठा करती थीं, जब वह लाहौर में थी। सहसा वह सिसक उठी—"परंतु ज्ञान, मेरे ज्ञान, अब उन बातों में क्या रक्खा है ? अब तो मैं लाश-मात्र हूँ ! मेरी चेतना कब की मर गई। हाय ! मैं क्योंकर जिंदा हूँ ! मैं कुलटा ! कलंकिनी !"

ज्ञानचंद्र ने रत्ना के होठों पर अपनी उँगलियाँ रख दीं—"नहीं सुनना चाहता रत्ना, तुम्हारे मुँह से ये शब्द। तुम स्वर्ण हो ! तपकर आँच से निकली हो। मेरे निकट तुम्हारा तेज बढ़ गया है। तुम सती-साध्वी निष्पाप, निष्कलंकिनी हो।"

"सच ज्ञान, क्या तुम मुझे ऐसा समझते हो ?"

"क्यों नहीं ?"

"तो ज्ञान, मैं अब भी ज़िंदा रहना पसंद करूँगी। शायद भगवान् सोमनाथ को मेरी ज़रूरत हो।"

ज्ञानचंद ने कहा—"रमा, मैं हवाई जहाज़ लेकर तुम्हारे लिये आया हूँ। पर तुमने उस अफ़सर की हत्या क्यों कर डाली ? तुम तो यों भी उससे छुटकारा पा सकती थीं।"

"नहीं ज्ञान, तुम्हें मालूम नहीं, वह मुझे किसी प्रकार छोड़ने को तैयार न था। तब मैंने उसे झूठा प्यार दिखाया, और अवसर पाकर क़त्ल कर दिया।"

"परंतु अब तुम यहाँ कैसे ?"

"यहाँ मैं उसके छोटे भाई की क़ैद में हूँ। उसे भी मैंने झूठा प्यार दिखाया कि शायद उसकी सहायता से मेरा उद्धार हो सके। सच यह है कि उसी की सहायता से मैंने उसे मारा है। उसने मुझे यहाँ लाकर छिपाया है, और शोर यह कर दिया है कि मैं उसे मारकर भाग गई हूँ। अब तुम्हीं बताओ, इस क़ैद से कैसे निकलूँ ?"

"वह आदमी कहाँ है ?"

"सुना है, पुलिस ने उसे संदेह पर क़ैद कर लिया है। उसकी एक चचेरी बहन है। वह उसे छुड़ाने की कोशिश में है। मुझे यहाँ छिपाकर जब से गया है, लौटा नहीं। जब तुमने दरवाज़े

पर थपकी दी, तब समझी कि वही है, और आकर दरवाज़ा खोल दिया।"

"अच्छा, मेरे पीछे-पीछे आओ। लो, यह बोरक़ा तुम ओढ़ो, और अगर घर में किसी मर्द की पोशाक हो, तो लाओ, मैं पहन लूँ।"

तत्काल ही यह प्रबंध हो गया, और दोनो वहाँ से निकल पड़े।

ज्ञानचंद रत्ना को लिए हुए उस स्थान पर, जहाँ वह ठहराया गया था, पहुँचा, तो रात के तीन बजे थे। रतनलाल नागर मियाँ अनवरहुसैन बनेखुर्राटे ले रहे थे। ज्ञानचंद ने उन्हें जगाया—"लो, रत्ना आ गई। अब सोने का समय नहीं है। तुम आज ही इसे लेकर हिंदुस्तान चले जाओ। मेरी जगह पर रत्ना होगी। दो हम आए थे, दो जा सकते हैं। रह गया मैं। देखा जायगा। किसी प्रकार आ ही जाऊँगा, अगर भगवान् सोमनाथ ने चाहा।"

दूसरे दिन अपनी बीबी-समेत मियाँ अनवरहुसैन नवाब जूनागढ़ से विदा लेकर हिंदुस्तान के लिये रवाना हो गए। ज्ञानचंद ने उन्हें दूर से हवाई जहाज़ पर चढ़ते देखा, और संतोष की साँस ली।

बंबई में हवाई जहाज़ से उतरने के बाद मियाँ अनवर-हुसैन ने अपना असली वेश धारण किया और रत्ना ने अपना। और, वेरावल में मिस्टर सोलंकी को तार दिया कि दूसरे दिन सवेरे की गाड़ी से पहुँच रहे हैं।

सोलंकी-सदन में आज हर्ष का ठिकाना नहीं था। श्रीमती सोलंकी ने बड़े प्रेम से रत्ना को मोटर से उतारकर, अपने खासकमरे में ले जाकर बैठाया, और उसके दुख-सुख के समाचार पूछने लगीं।

रत्ना ने अपने चारों तरफ़ देखा, जैसे उसे कहने में संकोच हो रहा हो।

"ज़रा भी संकोच न करो मेरी बेटी! तुम्हारा उन गुंडों के चंगुल से निकलकर यहाँ पहुँचना मेरे लिये गर्व की बात है। तुम न आतीं, तो लज्जा मुझे मार डालती। तुम आ गई हो, तो मैं मस्तक ऊँचा करके चलूँगी।"

थोड़ी ही देर में चौधरी मलखानसिंह को लिए हुए सोलंकी हरदेवसिंह वहाँ दाखिल हुए। रत्ना को उन्होंने अपनी बाँहों में आबद्ध कर लिया—"मेरी सीता! मेरी जानकी! मेरी कल्याणी! मुझे जूनागढ़ के राज्य से भी बहुत बड़ी चीज़ मिल गई है। तुमने सोलंकी-कुल की लज्जा रख ली!"

"और उस पाकिस्तानी जासूस को कहाँ छोड़ा?" श्रीमती सोलंकी ने पूछा।

"उसे पुलिस के हवाले करेंगे।" चौधरी मलखानसिंह ने कहा।

इस आनंद में दुःख की रेखा केवल इतनी ही थी कि ज्ञानचंद पाकिस्तान में रह गए थे।

---

शरणार्थी युवक ज्ञानचंद मुसलिम वेष में कराची की सड़कों पर घूम रहे हैं। वह अपने मन के भावों को दबाकर उन मुसलमानों में घुल-मिल रहे हैं, जो भारत विभाजन के समय हिंदुस्तान छोड़कर पाकिस्तान आए थे। वह देखते हैं, इनके रोम-रोम में हिंदुओं और हिंदुस्तान के प्रति घृणा भरी हुई है। अगर उन्हें मालूम हो जाय कि वह हिंदू है, तो शायद वे उसकी बोटी-बोटी काट डालें।

जहाँ भी वह जाते हैं, यही सुनते हैं कि सिर्फ तादाद अधिक होने के कारण इतना बड़ा मुल्क हिंदुस्तान काफिर और बुद्धू हिंदुओं के हाथ में पड़ गया। जगह-जगह वह गजनी, चंगेजखाँ और औरंगजेब आदि की कहानियाँ सुनते हैं, और सुनते हैं कि इतने बड़े क़त्लआमां के बाद भी हिंदुस्तान में हिंदुओं की तादाद कैसे इतनी ज्यादा रह गई कि इस्लाम के बंदों को वह देश छोड़ना पड़ा।

उन धर्मांध मुसलमानों के बीच वह भी उसी प्रकार की बातें करते हैं। पर अंदर-ही-अंदर उस महान् हिंदू-धर्म की प्रशंसा करते हैं, जो मुसलमानों के इतने प्रबल आक्रमणों के बाद भी फूलता-फलता रहा।

इस प्रकार दिन-भर वह इस टोह में भटकते रहे कि कहीं

कोई हिंदू या सिक्ख दिखाई पड़े, तो उससे बातें करें, और स्वदेश पहुँचने के उपाय जानें। परंतु उन्हें अपने सिवा कहीं कोई हिंदू दिखाई न पड़ा। और, वह स्वयं भी तो मुसलमान ही प्रतीत हो रहे थे!

अनायास उनके पग कराची के हवाई अड्डे की ओर बढ़ रहे थे। एक शरणार्थी मुसलमान में जितनी भी ऐंठ, शान और भारत के प्रति द्वेष-भाव हो सकता है, उस सबको प्रदर्शित करते हुए वह बढ़ रहे थे।

दिन डूब चला था। पास की मसजिद से अजान की आवाज़ आई। पड़ोस के मुसलमान उसमें नमाज़ पढ़ने के लिये इकट्ठा हो रहे थे। ज्ञानचंद को लगा, यदि वह इस मसजिद में न जायगा, तो उसके मुसलमान का वेष धारण करने का स्वाँग पूरा न होगा। एक विचित्र आंतरिक प्रेरणा से वह उस मसजिद की सीढ़ियों पर ऐसे चढ़ने लगे, जैसे रोज़ के अभ्यासी हों।

एकाएक पीछे से आवाज़ आई—"हलो सुईद साहब! यह लीजिए हिंदुस्तान जाने का अपना परमिट।"

ज्ञानचंद ने, जो अभी मसजिद के ऊपर तक भी नहीं पहुँचा था, पीछे की ओर घूमकर देखा, एक नाटे क़द का पंजाबी खड़ा मुस्करा रहा है।

ज्ञानचंद ने उसके हाथ से वह काग़ज़ ले लिया, और इसके पहले कि वह कुछ कहे, वह पंजाबी मुसलमान बोला—"मुझे

मालूम था कि आप यहाँ नमाज़ पढ़ने आएँगे। जाइए, जल्द कीजिए।"

"जी, बहुत ख़ूब! अभी जाता हूँ।"

उस पंजाबी मुसलमान से हाथ मिलाते हुए ज्ञानचंद सीढ़ियों के नीचे उतरे।

"मेरी कार नीचे खड़ी है। मैं इसीलिये यहाँ लेता आया, जिससे आपको ज़रा भी दिक़्क़त न हो।"

ज्ञानचंद ने इसके जवाब में उसकी ओर घूमकर कुछ इशारों और अस्पष्ट शब्दों से कुछ ऐसी बात कही, जिसका वह स्वयं मर्म नहीं समझते थे।

तेज़ी से लंबे डग धरते हुए वह मसजिद के बाहर निकले। सड़क पर एक बेमरम्मत सी पुरानी कार खड़ी थी। ज्ञानचंद को देखते ही ड्राइवर ने उसका द्वार खोला, और अदब के साथ एक ओर खड़ा हो गया। ज्ञानचंद चुपचाप कार में जा बैठे। उसके बाद उन्हें अनुभव हुआ कि ड्राइवर भी आगे की सीट पर बैठ गया है, और कार हवाई अड्डे के रास्ते पर तेज़ी से जा रही है।

ज्ञानचंद ने परमिट को ध्यान से पढ़ना शुरू किया। उन्हें लगा कि यह मुर्शिद संभवतः वह आदमी है, जिसने अपने भाई को रज़ा को पाने के लिये क़त्ल कर डाला था, क्योंकि वह उसी के कपड़े पहने हुए था, और संभवतः इसी धोखे में उसे इस क़ातिल के साथी ने वह परमिट पकड़ा दिया है।

"ईश्वर सहायता करता है, तो इस तरह!" मन-ही-मन कहते हुए ज्ञानचंद इन तमाम घटनाओं पर विचार करते जा रहे थे, जो उनके जीवन में इस तेज़ी के साथ घट रही थीं।

उन्होंने अपने बाहुओं को देखा। उन्हें लगा, जैसे वह शरीर उनका नहीं, किसी और का है। उन्होंने मन-ही-मन भगवान् सोमनाथ को प्रणाम किया, और कहा—"प्रभो, मेरे जैसे व्यक्ति के जीवन में तुम कितना चमत्कार भर रहे हो! परंतु प्रभो, जब ग़ज़नी आया था, तब तुम पूर्णतया पत्थर क्यों हो उठे थे? तब तुमने अपने तेज से उस यवनराज को भस्म करके अपने भक्तों का त्राण क्यों नहीं किया? आज मैं तुम्हारी शक्ति का जो अनुभव कर रहा हूँ, यह उस समय के हमारे पूर्वजों ने क्यों नहीं किया?"

हवाई जहाज़ अनंत आकाश के सन्नाटे में एक विचित्र सन्नाटा भरता हुआ चला जा रहा था, और उसकी गति से ज्ञानचंद के मस्तिष्क में यह प्रश्न समा रहा था। तन्मयता की इस तंद्रा में उन्हें लगा कि उनके सामने सोमनाथ महादेव की काली, विशाल मूर्ति खड़ी है, और उसके अंदर से एक विचित्र प्रकार की आभा फूटकर चारों तरफ़ फैल रही है।

इस ध्यानावस्थित अवस्था में उन्हें लगा कि कोई उनके कानों में कह रहा है—"ग़ज़नी के हाथों में जो तलवार थी, उसमें भी मेरी ही शक्ति थी।"

"तो प्रभो, तुमने अपनी ही प्रतिमा का विनाश अपने ही हाथों क्यों किया ?"

"यही तो सृष्टि का नियम है—निर्माण और नाश, नाश और निर्माण।"

ज्ञानचंद के श्रवणों में ये शब्द उद्घोषित होने लगे।

"तो आदि काल से लेकर" उन्होंने सोचा—"भारत-विभाजन के समय तक इतिहास के जो पृष्ठ रक्त से रँगे गए, वे सब प्रभु-प्रेरित थे ? ओह भगवान्, तुम्हारी कैसी लीला है !"

उनकी आँखों के सामने सृष्टि के आरंभ से लेकर अब तक निर्माण और नाश के दृश्य रजतपट के छायाचित्रों की भाँति बनने-बिगड़ने लगे।

सबसे अंत में उन्हें वे भीषण नर-संहार-कांड दिखाई पड़े, जिन्हें वह पाकिस्तान में छोड़ आए थे, और उन्हें ट्रेन की वह दुर्घटना दृष्टिगोचर हुई, जिसमें उनके बंधु-बांधव मारे गए थे, और रत्ना छीनी गई थी।

पागलों की भाँति वह चीख़ उठे। पर तुरंत ही वह अपने होश में आ गए। हवाई जहाज़ उतरने की चेष्टा कर रहा था, और नीचे बंबई शहर लहराते समुद्र के किनारे इस तरह प्रतीत हो रहा था, जैसे कोई सुंदरी अपनी नीली साड़ी के अंचल पर एक रंगीन क़सीदा काढ़ रही हो।

ज्ञानचंद हड़बड़ाकर सावधान हो उठे। ओह ! इतना सोया कि बंबई में ही आकर आँख खुली।

हवाई जहाज अब अड्डे पर खड़ा था। वह बाहर निकले, और सड़क की भीड़ में खो गए।

वह थोड़ी दूर गए थे कि पुलिस की एक लारी ने उन्हें रोका—"क्यों जनाब, आप पाकिस्तान से आ रहे हैं?"

ज्ञानचंद किसी भावी आशंका से भयभीत हो उठे। पर तुरंत ही उन्होंने अपने को सँभाला—"मुझे पाकिस्तान से क्या मतलब?"

"पोशाक से तो तुम पूरे पाकिस्तानी जान पड़ते हो?"

"जी, ये कपड़े! अभी एक आदमी मोटर पर इधर से गया है। मैं शरणार्थी हिंदू कोपीन लगाए घूम रहा था। शायद उसे दया आई, और उसने मेरी ओर ये कपड़े फेक दिए।"

पुलिसवालों ने उन कपड़ों को उतरवा लिया और कहा—"बड़ा चालाक है। अब उसका पता शायद ही लगे।"

वे कपड़ों-सहित ज्ञानचंद को क़रीब के थाने में ले गए। वहाँ ज्ञानचंद को मालूम हुआ कि मुईद नाम के एक मुसलमान का परमिट लेकर एक दूसरा मुसलमान हिंदुस्तान चला आया है, और उसी की जाँच-पड़ताल हो रही है।

पूछताछ के बाद ज्ञानचंद छोड़ दिए गए, और भगवान् सोमनाथ को धन्यवाद देते हुए वह वेरावल-बंदर के लिये रवाना हो गए।

जब वह सोमनाथ में मिस्टर सोलंकी के निवास-स्थान पर पहुँचे, तब देखा कि वहाँ बड़ी चहल-पहल है। अपनी भांजी

को वापस पाने के उपलक्ष में मिस्टर सोलंकी ने एक बहुत बड़ी दावत दी थी, जिसमें वेरावल और सोमनाथ के प्रायः सभी प्रतिष्ठित जन उपस्थित थे।

ज्ञानचंद को देखते ही मिस्टर सोलंकी ने दौड़कर उन्हें अपनी बाँहों में आबद्ध कर लिया "ज्ञानचंद, तुम आए ! हम सोचते थे कि तुम जरूर आओगे।"

श्रीमती सोलंकी और रत्ना, दोनो ही दौड़ी हुई आईं, और उन पर प्रश्नों की बौछार करने लगीं।

ज्ञानचंद ने विस्तार के साथ अपने सब अनुभव सुनाए, जिन्हें वहाँ उपस्थित समस्त जनों ने बड़े ध्यान से सुना।

ज्ञानचंद अब मानव ही न रहे, वह उन सबको महामानव प्रतीत हुए। उनमें अद्भुत दैवी शक्तियों के विद्यमान होने की घोषणा की गई, और श्रीमान् तथा श्रीमती सोलंकी ने कृतज्ञता-पूर्ण उत्तेजना की इस घड़ी में घोषित कर दिया कि वे रत्ना का विवाह ज्ञानचंद के साथ करेंगे, और उन्हें इतनी संपत्ति प्रदान करेंगे कि वह उनके सम्मानित संबंधी प्रतीत हों।

परंतु समस्त उपस्थित जनों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब ज्ञानचंद ने मिस्टर सोलंकी के इस प्रस्ताव को कृतज्ञता-पूर्वक अस्वीकार कर दिया। उनका मन आज दूसरी दुनिया में विचरण कर रहा था। वह व्यावहारिक जगत से निकलकर भावना और स्वप्न के एक विचित्र संसार में पहुँच चुके थे।

"खैर, इस मामले पर हम फिर विचार करेंगे।" कहते हुए मिस्टर सोलंकी ने इस प्रकरण को समाप्त किया।

दावत के बाद ही रत्ना को सोमनाथ के मंदिर में ले जाने का कार्यक्रम बना था। एक बहुत बड़ा जुलूस बनाकर नृत्य और संगीत के साथ सब लोग सोमनाथ के मंदिर की ओर रवाना हुए। प्राचीन काल में सोलंकी-राजघराने के लोग इसी प्रकार मंदिर में भगवान् सोमनाथ का दर्शन करने जाया करते थे। आज एक हज़ार से भी अधिक वर्षों के बाद उस प्राचीन प्रथा का फिर से आरंभ किया गया था।

भग्न मंदिर के गिर्द बहुत बड़ी भीड़ थी। बहुत दूर-दूर के लोग रत्ना के सोमनाथ के मंदिर में प्रवेश के शुभ मुहूर्त के अवसर पर उसे आशीर्वाद देने के लिये आए थे। उनके अलावा मंदिर में मूर्ति की स्थापना हो जाने से और भी तमाम लोग जमा थे।

उस दिन मंदिर में रात-भर शिव-स्तवन, पूजन और कीर्तन जारी रहा। अनेक लोगों ने निराहार निशा-जागरण का व्रत लिया था। क्रमशः अन्य लोग चले गए, और थोड़े-से लोग मंदिर में रह गए।

श्रीमती सोलंकी, रत्ना और ज्ञानचंद खास तौर से जागते हुए प्रार्थना और उन दृश्यों की प्रतीक्षा करते रहे, जो वे प्रेत-विद्या-विशारद के साथ उस मंदिर में देख चुके थे।

निशा क्रमशः गंभीर होती जा रही थी। वातावरण शांत

और रहस्यमय होता जा रहा था। श्रद्धालु भक्तों की पलकों पर निद्रा का बोझ लदता जा रहा था। शैथिल्य के इस वातावरण में ज्ञानचंद और रत्ना ने एक दूसरे को देखा। वे एक दूसरे को पिछले समस्त दिनों की अपेक्षा अधिक सुंदर, अधिक प्रिय और आत्मीयपन के दृढ़तर धागे से बँधे हुए प्रतीत हुए। भगवान् सोमनाथ की नव स्थापित काली, विशाल मूर्ति उनके मन में लोक-सेवा का महान् भाव उदय कर रही थी। उन्हें लगा कि वे दोनो भगवान् शंकर के मानवीय रूप के प्रतीक शिव और पार्वती हैं।

ज्ञानचंद को अनुभव हुआ कि सोलंकी हरदेवसिंह के प्रस्ताव को अस्वीकार करके उन्होंने भूल की। वह अकेले सोमनाथ की पूजा नहीं कर सकते। इसके लिये उन्हें रत्ना-जैसी साथिन की आवश्यकता है।

रत्ना भी अपने आप में निर्बलता अनुभव कर रही थी। ज्ञानचंद-जैसे व्यक्ति उसकी सहायता को सब काल प्राप्त हों, तो वह अपने को बहुत बलवती अनुभव करेगी। परंतु उसका मन प्रश्न के इस पहलू की ओर जैसे उस समय नहीं गया था, जब सोलंकी हरदेवसिंह ने इसका प्रस्ताव किया था, वैसे ही अब भी नहीं गया। कुछ स्पष्ट भाव-बिंदु उसके मस्तक पर प्रकट हो रहे थे। परंतु उसने अपना जीवन भगवान् सोमनाथ की सेवा के लिये अर्पित कर दिया था। अतएव वह मन के समस्त विचारों को मन के अंदर ही दबाकर शिवाराधन में तन्मय थी।

क्रमशः रात और बढ़ी। श्रीमती सोलंकी की आँखें झप गईं। गायन और कीर्तन करनेवालों का स्वर कुछ मंद पड़ा, और एकाएक रत्ना ज्ञानचंद के और निकट पहुँचकर, उन्हें झकझोर-कर बोली—"देखो, देखो, सामने देखो।"

ज्ञानचंद दीर्घ जम्हाई लेते हुए बोले—"क्या?"

"सामने देखो, तुम्हें कुछ दिखाई पड़ता है?"

ज्ञानचंद उठकर खड़े हो गए। उनके साथ ही उन्हें मंदिर में भगवान् सोमनाथ की आरती का विचित्र दृश्य दिखाई पड़ा। सोमनाथ की मूर्ति उन्हें साधारण मनुष्य की ऊँचाई से ड्योढ़ी ऊँची प्रतीत हुई। उन्होंने देखा, एक साथ सैकड़ों देव-दासियाँ आरती की प्रकाशमान दीपावलियाँ लिए मूर्ति के सामने नृत्य कर रही हैं, और एक तरफ़ सैकड़ों ब्राह्मण उच्च स्वर में वेद-पाठ कर रहे हैं। मंदिर के अंदर बहुरंगी मणियों से जटित दीप जगमगा रहे हैं, और चारो तरफ़ एक विचित्र प्रकाश फैल रहा है।

इस अद्भुत समारोह के वे दोनो एक अंग-से प्रतीत हुए, और बाजों की ध्वनियों के साथ क़दम बढ़ाते हुए क्रमशः मूर्ति के निकट पहुँच गए।

एकाएक ज्ञानचंद की दृष्टि मानव-वेषधारी उस देव-कन्या पर पड़ी, जिसके उन्हें प्रथम दिन मंदिर में दर्शन हुए थे। वह उन्हें अपने निकट आती प्रतीत हुई। उन्होंने देखा, वह उनके निकट आकर रत्ना के सुंदर शरीर में समा गई है।

एक विचित्र भय से वह आक्रांत हो उठे। "रत्ना! रत्ना!" वह चीख उठे। पर रत्ना उन्हें हाथ जोड़े, श्रद्धा से मस्तक झुकाए अटल, शांत प्रस्तर-प्रतिमा-सी खड़ी प्रतीत हुई।

ज्ञानचंद अब डरे नहीं—घबराए भी नहीं। वह इस प्रकार के दृश्यों के अभ्यासी हो गए थे।

वह एकटक रत्ना की ओर देखते रहे कि उसे क्या हो गया है? क्रमशः जब आरती का स्वर मंद पड़ा, और देव-दासियाँ जाने लगीं, तब रत्ना भी उनके साथ उस पथ की ओर बढ़ती हुई प्रतीत हुई, जो क्रमशः अनंत आकाश में विलीन होता जाता था। ज्ञानचंद ने उन्मादी की भाँति दौड़-कर रत्ना का हाथ पकड़ा—"रत्ना, तुम मत जाओ। मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकूँगा।"

और उसने इस तरह आर्त स्वर में भगवान् सोमनाथ को पुकारा, जैसे किसी ने उसके पेट में बरछी घुसेड़ दी हो।

अब सबेरा हो रहा था। मिसेज सोलंकी जो तंद्रा में थीं, चैतन्य अवस्था में आईं।

"क्या बात है?" बोलीं।

"हाय! रत्ना!" ज्ञानचंद की घिग्घी बँध गई। सबने देखा, रत्ना वहाँ नहीं है।

सब एक विचित्र भय और आशंका के वशीभूत हो उसे मंदिर के खँडहरों में खोजने लगे।

रत्ना अब हिंदुस्तान में थी। सोमनाथ महादेव की सेवा में अपना शेष जीवन व्यतीत करने की उसकी महत्त्वाकांक्षा पूर्ण हुई थी। परंतु उसमें जैसे जीवन और उल्लास न था। उसकी आत्मा जैसे उसके शरीर को छोड़कर चली गई थी। पाकिस्तान से न-जाने किस अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर वह जीवित हिंदुस्तान पहुँच गई थी। परंतु यहाँ पहुँचने पर उसे जैसे जीवित रहने की इच्छा ही नहीं रह गई।

वह, जिसका शरीर पाकिस्तानियों के अपावन स्पर्श से दूषित हो गया है, क्यों जिंदा है ?—यही प्रश्न आज रह-रहकर उसके मस्तिष्क में उठ रहा है। निश्चय ही वह कायर है। कायर न होती, तो पद्मिनी के समान पाकिस्तानियों के अपावन स्पर्श के पहले ही प्राण न दे देती ?

वह लाख चेष्टाएँ करती कि भगवान् शंकर के स्तवन में ध्यान लगाए, परंतु उसका मन बार-बार उस ओर से हटकर इसी प्रश्न की जलती हुई चिता में सुलगने लगता। अंत में उसने निश्चय किया कि उसका मर जाना ही ठीक है। उसने इधर-उधर देखा। अब से हजार वर्ष पहले इसी स्थान पर हजारों हिंदू - नारियों ने रक्षा का और कोई उपाय न देख

आत्महत्याएँ की थीं। जो नहीं कर सकी थीं, उन्हें महमूद पकड़कर ग़ज़नी के क़िले में ले गया था। वहाँ उनकी क्या दुर्गति हुई होगी, यह आज वह पाकिस्तान में अपने ऊपर बीते कष्टों से स्वयं अनुभव कर रही है। इस कलंकमय जीवन का भार वह कब तक वहन करती रहे?

इसी समय मंदिर में उसे वे अद्भुत दृश्य दिखाई पड़े, जिनका ज़िक्र दिन में वह ज्ञानचंद से सुन चुकी थी, और जब वे दृश्य विलीन होने लगे, तब वह उठी कि उन्हीं के साथ वह भी विलीन हो जाय, और मंदिर के बाहर निकल आई।

दक्षिण में सागर लहरा रहा था। रत्ना उस ओर बढ़ती गई कि लहरों में समा जाय। उसे लग रहा था कि मरने के लिये इससे अच्छा अवसर और स्थान शायद ही फिर कभी मिले।

इधर ज्ञानचंद, जो अर्धजागृत् अवस्था में थे, "हाय रत्ना!" कहकर चिल्ला उठे। मिस्टर और मिसेज़ सोलंकी को भी घबराहट पैदा हुई कि आखिर रत्ना गई कहाँ? एक विचित्र प्रकार की चिंता से ग्रस्त वे भी मंदिर के बाहर निकल आए, और रत्ना को समुद्र की तरफ़ बढ़ते देखा।

"लौट आओ मेरी बेटी!" मिस्टर सोलंकी ने चिल्लाकर कहा।

"रत्ना! रत्ना! तुम्हें हो क्या गया है?" मिसेज़ सोलंकी ने घबराई हुई आवाज़ में कहा।

"रत्ना, ठहरो। मैं भी आता हूँ।" ज्ञानचंद कहते हुए दौड़े।

अपने पीछे एकाएक ये सब आवाजें आती हुई सुनकर रत्ना कुछ ठिठकी।

"मेरी बेटी! अगर तुम आत्महत्या करके मरना ही चाहती हो, तो मैं तुम्हें नहीं रोकूँगा। पर अभी जल्दी क्या है? अच्छी तरह सोच विचारकर ही कोई काम करना चाहिए। आत्महत्या जीवन से भागना है। आत्महत्या सबसे बड़ी कायरता है। आत्महत्या ………………"

"इसके सिवा मेरे लिये और रास्ता ही क्या बचा है?" रत्ना ने अत्यंत विनय-भरे स्वर में सोलंकी हरदेवसिंह की ओर देखते हुए कहा।

"मैं बताऊँगा, पर पहले तुम लौटो तो।"

मिस्टर सोलंकी ने द्रुत गति से आगे बढ़कर रत्ना को अपनी दोनो बाँहों में आबद्ध कर लिया, और मृदु स्वर में कहा—"मेरी प्यारी बेटी! तुम सर्वथा निर्दोष हो। जिस कार्य में तुम्हारी आत्मा को योग न हो, जिस कार्य में तुम्हारे मन का मेल न हो, वह कार्य तुम्हारा कार्य नहीं है। जिन्होंने तुम्हारे पवित्र शरीर का अपने स्पर्श से मलिन बनाया है, उनसे बदला लेना भी हिंदुत्व की साधना है। आज भगवान् सोमनाथ के इस खंडित मंदिर की दीवारें तुम्हें और हम सबको अन्याय से लड़ने का आह्वान कर रही

हैं। आओ, इस विशाल समुद्र के किनारे हम तुम प्रतिज्ञा करें कि हम यह बदला लेंगे। आत्महत्या या शरीर के इस प्रकार के उपयोग में कौन श्रेयस्कर है, यह तुम स्वयं सोचो, और निर्णय करो। अगर तुमने आत्महत्या का ही निर्णय किया है, तो मैं उसमें बाधा नहीं डालूँगा। परंतु मेरी बातों पर पहले विचार कर लो।"

वह रत्ना को अपनी मोटर कार तक ले आए। उसे, मिसेज़ सोलंकी को और फिर ज्ञानचंद को कार पर चढ़ाकर स्वयं कार चलाते हुए अपने सोमनाथवाले घर में पहुँचे।

इधर कई दिनों से मिस्टर सोलंकी का ध्यान अपनी डाक की ओर नहीं गया था। अनेक चिट्ठियाँ, तार और पुस्तकों के पार्सल उनके प्राइवेट सेक्रेटरी ने उनकी मेज़ पर यथाक्रम सजाकर रख दिए थे।

घर में प्रवेश करते ही उनका विचार सबसे पहले अपने दैनिक जीवन के इस पहलू की ओर गया, अतएव वह सीधे अपने दफ़्तर के कमरे में गए, और वहीं चाय मँगाई। रत्ना को भी अपने साथ उसी कमरे में ले गए।

मिस्टर सोलंकी ने पुस्तकों के पार्सलों की ओर संकेत करते हुए रत्ना से कहा—"बेटी! यह काम मैं तुम्हें सौंपता हूँ। ये वे किताबें हैं, जिनमें सोमनाथ का पूर्व-इतिहास कुछ न कुछ वर्णित है। मैं चाहता हूँ, इन्हें तुम मेरे लिये पढ़ो, और मुझे बताओ कि ग़ज़नी के हमले से पहले सोमनाथ का वैभव किस

परा काष्ठा पर पहुँच चुका था, और गजनी इस विशाल देश में प्रवेश करके शक्ति और धर्म के इस विशाल प्रतीक को क्योंकर ध्वंस करने में सफल हुआ ?"

"मामाजी, मैं आपकी आज्ञाओं का पालन करूँगी।" कहते हुए रत्ना ने उन पुस्तकों को उलटना आरंभ किया।

इधर मिस्टर सोलंकी ने जल्दी-जल्दी तारों और चिट्ठियों को पढ़ना और संक्षेप में अपने सेक्रेटरी से उनका जवाब लिखवाना आरंभ किया।

एक पत्र, जिसे मिस्टर सोलंकी ने सबसे पहले उठाया था, उनके लिये विशेष चिंता का कारण बन गया था। वह राजकोट के एक जागीरदार का पत्र था, जिसके पुत्र के साथ रत्ना के विवाह की बातचीत चल रही थी। भारत के विभाजन से पहले यह जागीरदार साहब और उनका पुत्र, दोनो ही इस संबंध के लिये लालायित थे। परंतु जब यह सुना कि रत्ना पाकिस्तान में रह गई थी, और बड़े प्रयत्नों के बाद छुड़ाकर वापस लाई गई है, तब इस संबंध के लिये उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया। इस संबंध में रत्ना के मामा ने अनुनय-विनय-भरे जितने भी पत्र लिखे थे, सबके नकारात्मक उत्तर मिले थे। और, इस समय जो पत्र और तार उनके हाथ में थे, उनमें अंतिम बार यही नकारात्मक उत्तर दुहराया गया था। एक दिन पहले जो सोलंकी हरदेवसिंह ने रत्ना की शरणार्थी युवक ज्ञानचंद से शादी करने की बात कही थी,

उसके पीछे शायद यह जातिवालों के साथ निराशा-जनक पत्र-व्यवहार था। जाति के अंदर रत्ना की शादी करने में असफल होने के कारण ही संभवतः उनका ध्यान जाति के बाहर ज्ञानचंद की ओर गया था।

हो सकता है, रत्ना ने जो आत्महत्या करने की चेष्टा की थी, उसका कारण यह अपमान भी हो। सोलंकी हरदेवसिंह का ध्यान दो वर्ष पूर्व की उस घटना की ओर गया, जब राजकोट के एक उत्सव में इन जागीरदार महाशय के पुत्र ने रत्ना को देखा था, और स्वयं अपनी माता द्वारा रत्ना की माता को यह संदेश कहलवाया था।

सोलंकी हरदेवसिंह के कानों में बहन के वे शब्द गूँज उठे, जो उसने उस समय ठकुरानी से कहे थे। उसने कहा था—"मैं रत्ना की शादी उसकी राय से करना चाहूँगी। अतएव उससे पूछकर बताऊँगी।" और, रत्ना ने इस शादी से इनकार कर दिया था, तो भी राजकोट के यह जागीरदार और ठकुरानी साहबा सोलंकियों के पीछे पड़े हुए थे। अगर इस बीच में भारत का विभाजन न हो जाता, और रत्ना उसके परिणाम-स्वरूप एक कलंकिता नारी न बन जाती, तो शायद यह अब भी अपना हठ जारी रखते।

परंतु आज पासा पलट गया था। आज रत्ना के हजार चाहने पर भी यह संबंध संभव न था। सोलंकी हरदेवसिंह इससे बहुत खिन्न थे। वह राम के उस रूप के पुजारी थे,

जिसने सीता का अपहरण करने पर रावण की लंका भस्म करा दी थी, और उसका सिर काट लिया था। परंतु राम के उस रूप के पुजारी न थे, जिसने सीता का परित्याग किया था। सीता का त्याग वह राम की एक भूल मानते थे, और ऐसी भूल, जिसके कारण हर युग में हिंदू-नारियों को सीता की-जैसी विषम परिस्थिति में पड़ने पर उपेक्षित होना पड़ा।

सोलंकी हरदेवसिंह आर्य-समाजी थे, और थे सच्चे समाज-सुधारक। काश कि वह राजकोट के जागीरदार के स्थान पर होते, और राजकोट के जागीरदार उनकी जगह पर होते! वह समाज में एक नया आदर्श उपस्थित करते। उनकी दृष्टि में रत्ना पापिनी नहीं थी। तन की पवित्रता या अपवित्रता को वह कोई ख़ास महत्त्व न देते थे। वह आत्मा की पवित्रता को ही पर्याप्त समझते थे, और रत्ना की आत्मा पवित्र थी। काश कि राजकोट के जागीरदार साहब और उनके पुत्र के मन में वह अपने ये तर्क बैठाल सकते!

इस प्रश्न पर वह रत्ना से भी बात करना चाहते थे। परंतु आज उसे आत्महत्या की ओर क़दम उठाते देख उनका साहस यह प्रश्न उठाने का न रहा।

आवश्यक पत्रों का उत्तर सेक्रेटरी को लिखाकर उन्होंने उसे बिदा किया। फिर उन्होंने रत्ना से पूछा—"बेटी! कुछ पता चलता है?"

"मामाजी! ये तो बड़े ही महत्त्व की पुस्तकें हैं।

इनमें सोमनाथ भगवान के विषय में अनेक बातें बिखरी पड़ी हैं।

"इनके पढ़ने में मेरा मन लगेगा, और मैं जो कुछ आप जानना चाहते हैं, इन पुस्तकों के सहारे आपको बताने की चेष्टा करूँगी।"

नौकर चाय ले आया। इसी समय मिसेज सोलंकी और ज्ञानचंद ने भी इस कमरे में प्रवेश किया।

"कुछ सुना?" मिसेज सोलंकी ने कहा।

"क्या?"

"वह पाकिस्तानी जासूस, जिसे हमने पुलिस के हवाले किया था, जेल से भाग निकला है।"

"इसका तो यह अर्थ है कि हिंदुस्तान में पाकिस्तान का जासूसी विभाग बड़े जोरों से काम कर रहा है।"

"कहीं हम पर नई मुसीबत न आवे!" श्रीमती सोलंकी बोलीं।

शत्रु के घृणित हाथों का मलिन स्पर्श और मृत्यु, इन दो में जब एक का चुनाव करना हो, तब हिंदू-नारी मृत्यु का आलिंगन ही स्वीकार करेगी। इसमें मतभेद की गुंजाइश नहीं है। तब रत्ना क्यों जीवित रही? उसने क्यों अपने शरीर को पाकिस्तानियों के हाथ में खिलौना बन जाने दिया? इस बात को वह जितना ही सोचती, उतना ही उसका मन दुखी होता। भगवान् सोमनाथ के मंदिर में प्रवेश करते वह चौंकती। अपने अपावन शरीर को वह मंदिर के भीतर नहीं ले जायगी। नहीं, कदापि नहीं। और, इसके साथ ही उसे मामा की बातें याद आतीं। शरीर की अपवित्रता का कोई अर्थ नहीं है। असल चीज आत्मा है। आत्मा की पवित्रता ही सच्ची पवित्रता है। शरीर से तो अहल्या भी अपवित्र हो गई थी। और, इसी लिये उसने अपने आपको पाषाण-शिला बन जाने दिया। उसमें पवित्रता का तेज होता, तो गौतम का अभिशाप भस्म हो जाता। परंतु राम की चरण-रज के स्पर्श से उसकी अपवित्रता जाती रही। और, उसे खयाल आया, वही रामजी सीता का उद्धार न कर सके। निर्दोष सीता को पृथ्वी के भीतर समाना पड़ा। तब उसे कौन क्षमा करेगा? उसका पाप बहुत बड़ा है।

इस प्रकार उसके मानस क्षितिज पर गंभीर विचारों की घटाएँ उठ रही थीं। घनीभूत अंधकार के बीच में ज्ञान की बिजली भी चमक-चमक उठती थी। पर उस क्षणभंगुर प्रकाश में वह अपना पथ निश्चित नहीं कर पा रही थी। उसकी मानसिक वेदना इस समाचार से और भी बढ़ गई थी कि राजकोट के जागीरदार साहब ने उसे कलंकिता नारी समझ अपनी पुत्र-वधू बनाने से इनकार कर दिया था। एक दिन वह था, जब उसकी "हाँ" को राजकोट के यह जागीरदार साहब अपना बड़ा सौभाग्य मानते थे पर आज उसकी "हाँ" का कोई अर्थ न था। वह जीवित लाश मात्र जैसे रह गई थी।

हाय! दुष्ट पाकिस्तानियों ने उसे किस हीन दशा में पहुँचा दिया था। उनके प्रति उसके हृदय में क्रोध और घृणा का जो भाव भर गया था, वह किसी प्रकार कम न हो रहा था। और फिर, यह अपमान आज का नहीं, हजारों साल पहले से चला आ रहा है। क्रमशः उसके मानस-पटल पर १००० वर्ष पूर्व की घटनाएँ अंकित हो उठीं। उसके कानों में उन स्त्रियों का क्रंदन गूँज उठा, जिन्होंने भगवान् सोमनाथ के मंदिर में अपनी आँखों से अपने पतियों और पुत्रों को गाजर मूली की तरह कटते देखा था। और, उसके मानस-पट पर उन स्त्रियों के चित्र खचित हो उठे, जिन्हें महमूद बंदिनी बनाकर गजनी के बाजारों में भेड़-बकरियों की तरह बिकने के लिये ले गया था। ओफ!

उसी समय कुछ उत्तेजित-से ज्ञानचंद ने उसके कमरे में प्रवेश किया।

"लो, पढ़ो।" उसने कहा।

रत्ना ने उसके हाथ से पर्चा लेकर पढ़ना आरंभ किया।

उसमें लिखा था—"हिंदुओं को याद रखना चाहिए कि जिसे वे सोमनाथ का मंदिर कहते हैं, वह वास्तव में मसजिद है, जिसे महमूद ग़ज़नी ने बनवाया था। उसके पहले यहाँ मंदिर रहा होगा, पर अब यह मसजिद है। आज हज़ारों वर्ष से इसमें मुसलमान नमाज़ पढ़ते आ रहे हैं। उनके इस अधिकार को छीनना अपने इस दावे को ग़लत साबित करना है कि हिंदुस्तान में हिंदू मुसलमान, दोनो को धार्मिक स्वतंत्रता है। हिंदू याद रक्खें। वे नया मंदिर बनाएँगे, तो उसको तोड़नेवाला नया ग़ज़नी भी फिर पैदा होगा।"

रत्ना ने पर्चे को घृणा के साथ ज्ञानचंद को वापस करते हुए कहा—"इस पर्चे के बाँटनेवालों तक मेरी आवाज़ पहुँचे, तो मैं ज़ोर से उनसे कहूँगी कि ग़ज़नी अब नहीं पैदा हो सकता। और, अगर पैदा होगा, तो इस बार हिंदुस्तान की भूमि पर क़दम रखने से पहले ही स्वर्गधाम पहुँचा दिया जायगा।"

"शाबाश मेरी बेटी!" सोलंकी हरदेवसिंह ने कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"तुमसे मैं इसी तरह के विचारों की आशा

करता हूँ। आज का हिंदुस्तान उस हिंदुस्तान से भिन्न है, जिस पर ग़जनी ने हमला किया था। कश्मीर और हैदराबाद में वे आज के हिंदुस्तान को देख चुके हैं। उनकी तबियत न भरी हो, तो और भी जहाँ चाहें, देखें।"

ज्ञानचंद ने कहा—"इसका एक ही उत्तर है कि हिंदुस्तान में एक भी मुसलमान न रहने पावे।"

"नहीं-नहीं, मेरे प्यारे दोस्त! यह हिंदुस्तान गांधी का हिंदुस्तान है। यह सबके लिये है।" सोलंकी हरदेवसिंह ने कहा।

"तो इस मंदिर के उद्धार का क्या प्रयोजन है? अयोध्या के राम मंदिर—जिसमें आज भी पूजा और आरती नहीं होने पाती, और जिसे बाबरी मसजिद कहकर हिंदुओं को उसमें जाने से रोका जा रहा है—की भाँति इसे भी क्यों न ग़ज़नवी मसजिद घोषित कर दिया जाय, और अधार्मिक राष्ट्र के नाम पर इसे ज्यों-का-त्यों छोड़ दिया जाय?"

ज्ञानचंद ने कहा—"जब मुसलमानों को भिन्न राष्ट्र मान लिया गया, और इसीलिये उनका पाकिस्तान बन गया, तब हिंदुस्तान को ग़ैर-मुसलिम राष्ट्र स्वीकार करने में क्यों लज्जा आती है? जब मुसलमान धर्म और संस्कृति के आधार पर भिन्न राष्ट्र चाहते थे, और वह उन्हें मिल गया, तब उसमें जायँ, और अपने धर्म और संस्कृति का चाहे जिस प्रकार विकास करें। शेष हिंदुस्तान में उनका पृथक् अस्तित्व क्यों रहे?"

"क्योंकि हिंदुस्तान हिंदू-मुसलमान, दोनो को दो भिन्न जाति नहीं मानता। हिंदुस्तान में जैसे अनेक धर्मानुयायी जैन, पारसी, ईसाई आदि रह रहे हैं, वैसे ही मुसलमान भी रहें। इसमें हमारा क्या बिगड़ता है?"

"और पाकिस्तान में हिंदू रहने पावें, चाहे न रहने पावें, क्यों?"

"रहने क्यों न पावें? अगर पाकिस्तान में हिंदू नहीं रहने पावेंगे, तो हिंदुस्तान ने जिन शर्तों पर बँटवारा स्वीकार किया है, उनसे बँधा है कि वहाँ हिंदुओं को शस्त्र-बल से बसावे।"

"पंजाब में क्या कोई हिंदू रह गया है?"

"नहीं रह गया है, तो रहेगा।" सोलंकी हरदेवसिंह ने कहा।

ज्ञानचंद कुछ बोले नहीं। उनका मन मुसलमानों के प्रति असीम घृणा से भरा हुआ था, और क़रीब-क़रीब यही अवस्था रत्ना के मन की थी। उसने कहा—"मामाजी, आपने मुझे जो किताब पढ़ने को दी हैं, उनसे मैं एक ही नतीजे पर पहुँची हूँ कि हिंदू हिंदू हैं और मुसलमान मुसलमान। एक मूर्ति पूजक है और दूसरा मूर्ति-तोड़क। पिछले एक हजार वर्षों से मुसल-मान हमारी देव-मूर्तियाँ तोड़ते आए और हम उसको सहन करते आए हैं। इतना ही नहीं, उनसे प्रेम भी करते आए हैं। अतएव वे नानक, कबीर और अंत में गांधी की तपस्याओं से भी नहीं सुधरे। उनके सुधार का एक ही रास्ता है। उन्हें अच्छी

तरह बताया जाय कि मूर्ति तोड़ना सहज काम नहीं है। और, अगर ग़ज़नी और ग़ोरी इन पापों की सज़ा से बच गए हैं, तो उनके वंशजों और अनुयायियों को इसका दंड भोगना पड़ेगा।"

"मैं यह नहीं मानता, मेरी बेटी! यहाँ जूनागढ़ में मुसलमानों का राज्य जब से यह मंदिर टूटा है, तब से क़ायम है। पर कोई कह नहीं सकता कि यहाँ के हिंदू शेष भारत के हिंदुओं से किसी बात में हीन हैं।"

"तब यहाँ का नवाब भारत का विभाजन होते ही पाकिस्तान क्यों भागा?"

"उसने मूर्खता की, बिलकुल वैसे ही, जैसे उन मुसलमानों ने मूर्खता की, जिन्हों ने पाकिस्तान बनवाया। परंतु हम उनकी तरह मूर्खता क्यों करें?"

"यही तो मैं भी कहता हूँ कि ग़ज़नी ने मूर्खता की, जो इस मंदिर को तोड़कर मसजिद बनवाया। तब हम उस मूर्खता को क्यों दुहराएँ, यानी इस मसजिद को फिर मंदिर का रूप क्यों दें?"

"ग़ज़नी ने इसे मसजिद कभी नहीं बनवाया था, केवल यहाँ का धन लूटकर ले गया था। हो सकता है, उसने मंदिर को भी न तोड़ा हो। हो सकता है, मंदिर देख-रेख के अभाव में इस स्थिति को पहुँच गया हो।"

"मान लीजिए, यदि ग़ज़नी ने इसे मसजिद बना दिया

होता, तो क्या उस हालत में सरकार उसे मंदिर का रूप पुनः न ग्रहण करने देती ?"

"शायद नहीं।" सोलंकी हरदेवसिंह ने कहा।

"कुछ भी हो, मैं यह माँग पेश करता हूँ कि जितने भी प्राचीन मंदिर आदि हैं, जिन्हें धर्मांध मुसलमान लुटेरों ने मस-जिद में बदला है, वे सब पुनः मंदिर बनाए जायँ, और शंख-ध्वनि से पवित्र किए जायँ।"

"मेरी भी यही माँग है कि हिंदुस्तान में एक भी ऐसा मुसल-मान न रहने पाए, जो मूर्ति तोड़ने का इरादा रखता हो। और, जिन्होंने यह पर्चा निकाला है, उनका पता लगाया जाय, और उन्हें पागलखाने में बंद कराया जाय।" रत्ना बोली।

श्रीमती चंद्रकुँअरि सोलंकी कब उस कमरे में आई थीं, और सबकी बातें ध्यान से सुन रही थीं, यह किसी ने नहीं जाना। वह बोलीं—"किससे तुम यह माँग पेश करती हो ?"

"अपने राष्ट्र से।" रत्ना ने कहा—"मैं नगर-नगर और गाँव-गाँव जाऊँगी, और ऐसा प्रबल लोक-मत तैयार करूँगी, जो स्वतंत्र भारत की सरकार पर 'दबाव डालेगा कि वह इस देश की पवित्र भूमि पर हजार वर्षों से होते आते हुए हिंदुओं के प्रति समस्त अन्यायों को दूर करे।"

"तो मेरी प्यारी बेटी, मैं समझूँ कि तुम कम-से-कम इस काम के लिये जीवित रहना चाहोगी ?"

"हाँ मामाजी, यदि आपका आशीर्वाद मुझे प्राप्त हो।"

"बेटी, मैं हिंदू हूँ। मेरा हिंदुत्व मुझे इस बात की आज्ञा देता है कि मैं अपने से भिन्न मत रखनेवालों को अपने रास्ते पर चलने की पूरी स्वाधीनता दूँ।"

"बशर्ते कि वही स्वाधीनता दूसरे भी हमें दें।" श्रीमती सोलंकी ने कहा।

"पर हम और रत्ना भिन्न नहीं हैं।" मिस्टर सोलंकी ने कहा—"मैं मूर्ति-पूजक नहीं हूँ, अतएव मंदिरों के उद्धार या नव-निर्माण में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। परंतु मैं मूर्ति-पूजकों का शत्रु भी नहीं हूँ, और जो प्रार्थना की इस पद्धति को अपनाए हुए हैं, उनका सहायक ही होना चाहता हूँ।"

"खैर, छोड़िए इन बातों को। आज मैं तुम लोगों से एक नई बात बताने आई हूँ। रत्ना की बातों से ऐसा लगता है, जैसे अब से हज़ार वर्ष पूर्व, जब ग़ज़नी ने इस मंदिर को तोड़ा था, यह अपने उस समय के पूर्व-जन्म में यहीं रही हो, और बहुतेरी घटनाएँ इसकी आँखों के सामने घटित हुई हों।"

"कैसे?" मिस्टर सोलंकी ने पूछा।

रत्ना ने आश्चर्य-भरी दृष्टि से अपनी मामी की ओर देखा।

श्रीमती सोलंकी ने कहना शुरू किया—"कल मुझसे रत्ना उन किताबों का जिक्र करने लगी, जो आपने सोमनाथ के संबंध में मँगाई हैं, तो मैं चकित रह गई। जैसे किसी को रामायण याद हो, तो एक चौपाई सुनने से उसके आगे की अनेक चौपाइयाँ दुहराने लगता है, वैसे ही रत्ना की बातें

सुनने से मुझे लगा कि ये किताबें पढ़ने से इसे अपने पूर्व जन्म की आँखों-देखी घटनाएँ याद हो आई हैं, और उन्हीं का इसने मुझसे वर्णन किया है। क्योंकि पूछने पर कि कहाँ लिखा है, जब मैंने उन स्थलों को खोला, तब मुझे सोमनाथ के वैभव का वह स्वरूप-वर्णन न मिला, जो मैंने रत्ना के मुँह से सुना था।"

मिस्टर सोलंकी कुछ बोले नहीं। उनका ध्यान अब भी हिंदू-मुस्लिम-समस्या पर टिका हुआ था। पर श्रीमती सोलंकी कहती गईं—"पूर्व-जन्म में जो विश्वास रखते हैं, वे इस बात की शंका कर सकते हैं कि रत्ना पूर्व-जन्म में जरूर सोमनाथ में उस समय रह चुकी है, जब यह स्थान अपने पूर्ण वैभव पर था।" और वह अपनी बात सिद्ध करने के लिये रत्ना से मंदिर के विषय में प्रश्न करने लगीं—"सोमनाथ महादेव के ऊपर जो जल चढ़ता था, वह कहाँ से आता था?"

"हरिद्वार से, गंगाजी से।"

"कौन लाता था?"

"डाक लगी रहती थी। नित्य गंगाजी में ब्राह्मण भजन गाते हुए जल घट भरते थे, और वह हाथ हाथ आता था।"

"सोमनाथ पर चढ़ने के लिये पुष्प कहाँ से आते थे?"

"मार्ग में अनेक सरोवरों में कमल खिले होते थे, और राजाओं की पुष्प-वाटिकाएँ थीं। उनमें से भक्त जन ताजे पुष्प तोड़कर लिए रहते थे, और उन्हीं जल लानेवाले ब्राह्मणों को दे देते थे।"

"सोमनाथ में यात्रियों की भीड़ कब होती थी ?"

"प्रायः फाल्गुन मास में, जब आमों में बौर लगते और विविध पुष्प खिलते थे।"

"आरती के समय कितने घंटे और घड़ियाल बजते थे ?"

"मंदिर में सोने की सौ मन की जंजीर थी, जिसमें सात सौ घंटे झूलते थे। आरती के समय सात सौ ब्राह्मण उस जंजीर को हिलाते थे, तब वे घंटे बजते थे।"

"प्रातःकाल कितने ब्राह्मण स्तुति-पाठ करते थे ?"

"कोई तीन सौ।"

"आरती के समय कितनी देव दासियाँ नाचती थीं ?"

"कोई पाँच सौ।"

"आरती के समय स्त्रियाँ कहाँ खड़ी होती थीं, और पुरुष कहाँ ?"

"देव दासियों के ठीक पीछे स्त्रियाँ खड़ी होती थीं, और पुरुष शेष सब भाग में।"

"आरती के समय तुम कहाँ होती थीं ?"

"प्रायः शिव-मूर्ति के पास। उनके इर्द-गिर्द पुष्प आदि हटाती रहती थी, और पुष्पों के साथ चढ़नेवाली स्वर्ण-मुद्राओं को निकाल-निकालकर चाँदी के पात्रों में अलग रखती जाती थी।"

इस अंतिम प्रश्न और उत्तर पर सब आश्चर्य-चकित-से

रत्ना की ओर देखने लगे। रत्ना ने कहा—"हो सकता है, मैं पूर्व-जन्म में सोमनाथ में रही हूँ, पर मुझे ऐसा लगता है कि मैंने यह सब उन्हीं किताबों में पढ़ा है।"

"नहीं मेरी प्यारी बेटी, तुम अवश्य पूर्व-जन्म की देवी हो, जो हम सबके सौभाग्य से सोलंकी-कुल में पैदा हुई हो। तुमसे हमें सोमनाथ का संपूर्ण इतिहास, एक-एक बात मालूम होगी।"

शीघ्र ही यह बात संपूर्ण सोमनाथ और वेरावल में फैल गई कि सोलंकी हरदेवसिंह के यहाँ एक लड़की है, जो भगवान् सोमनाथ के प्रधान पुजारी की कन्या थी—उन दिनों में, जब ग़ज़नी ने उसे तोड़ा था। यह चर्चा कई एक समाचार-पत्रों में भी छपी, और वेरावल में एक बहुत बड़ी सभा आयोजित की गई कि लोग रत्ना को देखें, और उसकी परीक्षा करें। इतिहास के बड़े-बड़े विद्वान् उस सभा में बुलाए गए।

बहुत-से लोगों ने इसे केवल धोखा समझा, परंतु जिन लोगों ने सोमनाथ का इतिहास पढ़ा था, वे रत्ना से प्रश्न करके और उसकी बातें सुनकर आश्चर्य-चकित रह गए।

वेरावल की सभा में जनता को दर्शन देने और अपने हज़ार वर्ष के पूर्व-जन्म की कहानी सुनाने की रत्ना तैयारी करने लगी। उस सभा में जाने के लिये रत्ना ने वही पोशाक बनवाई जो उस समय की स्त्रियाँ पहना करती थीं। उस सभा में भाषण देने के लिये जब उसने इतिहास की प्राचीन

घटनाओं का स्मरण किया, तब उसे लगा जैसे वे सब कल की बातें हों। उसे अपना जीवन सार्थक प्रतीत हुआ। उसने भगवान् सोमनाथ को मन-ही-मन प्रणाम किया, और उस सभा में खरी उतरने का उनसे आशीर्वाद माँगा।

---

सोलंकी हरदेवसिंह ने इच्छा प्रकट की कि वेरावल की बृहत् सभा में उपस्थित होने से पहले रत्ना थोड़े-से चुने हुए लोगों के बीच में अपनी कहानी सुनावे, जिससे देख लिया जाय कि जो कुछ वह कहती है, वह वास्तव में उसकी पूर्व-जन्म की स्मृति है, या आधुनिक यंत्रणाओं से त्रस्त उसके मस्तिष्क की निर्बलता-मात्र है। उनके इस प्रस्ताव को सबने पसंद किया, अतएव उन्होंने अपने सो..नाथवाले निवास-स्थान पर एक छोटी-सी गोष्ठी आयोजित की, जिसमें वे चुने-चुने लोग बुलाए गए, जिन्हें सोमनाथ के इतिहास का ज्ञान था। इस गोष्ठी में मंदिर के नव-निर्माण के लिये जो कमेटी बनी थी, उसके सदस्य खास तौर से आमंत्रित किए गए।

चाय के बाद सोलंकी हरदेवसिंह ने प ले ज्ञानचंद और फिर रत्ना का परिचय दिया। उन विचित्र दृश्यों का वर्णन किया, जो मंदिर के खँडहर में ज्ञानचंद ने देखे थे, और प्रेत-विद्या-विशारद ने दिखलाए थे। उन्होंने सबसे अंत में कहा—"हम लोगों की धारणा है कि रत्ना अपने पूर्व-जन्म में अब से एक हजार वर्ष पूर्व सोमनाथ में रह चुकी है। उन

दिनों की स्मृति उसके मस्तिष्क में आज भी ताज़ी है। मेरी प्रार्थना है, आप लोग इसकी कहानी सुनें, और इसकी परीक्षा करें।"

एक विचित्र मुस्कान और उत्सुकता के साथ उपस्थित जनों ने रत्ना का अभिवादन किया, और उसकी कहानी सुनने को तैयार हो गए।

रत्ना अपने आसन से उठी। उसने भगवान् सोमनाथ को मन-ही-मन प्रणाम करने के बाद उपस्थित जनों का अभिवादन किया, और कहने लगी—

"हम हिंदू आत्मा के फिर-फिर जन्म लेने में विश्वास करते हैं। इसका प्रत्यक्ष अनुभव आप लोगों को हो या न हो, परंतु हिंदुओं का यह विश्वास सोलहो आने सही है। आप मानें या न मानें, पर यवन के हाथों भगवान् सोमनाथ की मूर्ति को मैंने खंडित होते हुए अपनी आँखों से देखा है। मेरे लिये यह जैसे कल की बात है।"

रत्ना इतना कहने के बाद काँप-सी उठी। जिस भय ने उसकी आत्मा को एक हज़ार वर्ष पूर्व त्रस्त किया था, उससे जैसे वह आज भी आक्रांत हो उठी।

सोलंकी हरदेवसिंह ने उसकी पीठ पर हाथ फेरा—"कहो बेटी, कहो।"

रत्ना बोली—"एक बात हो, तो कहूँ। सैकड़ों बातें एक साथ याद आ रही हैं। सैकड़ों चीत्कारें मेरे श्रवणों में गूँज

उठी हैं। सैकड़ों परिचित चेहरे मेरे सामने प्रकट हो उठते हैं। किसका ज़िक्र करूँ, किसका नहीं, कुछ समझ में नहीं आता। अच्छा यह हो कि आप लोग प्रश्न करें, और मैं उत्तर दूँ।"

श्रीमती चंद्रकुँअरि सोलंकी ने पूछा—"बेटी, तू अपने उस पूर्व-जन्म में क्या थी, और क्या करती थी?"

"मामी, मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि मैं संभवतः मंदिर के प्रधान पुजारी की एकमात्र कन्या थी। मेरा काम था, मूर्ति पर चढ़नेवाली स्वर्ण-मुद्राओं को पुष्पों और बेलपत्रों से निकालकर चाँदी के पात्रों में रखना।"

एक इतिहासज्ञ ने पूछा—"यह काम तुम्हें ही क्यों सौंपा गया था?"

रत्ना ने जवाब दिया—"उन दिनों की यह परंपरा थी कि मूर्ति के पास श्रेष्ठ ब्राह्मणों की कुँआरी कन्याओं के सिवा और कोई नहीं रहने पाता था। मेरे विवाह की बातचीत चल रही थी। संभव है, वह यवन लुटेरा दो वर्ष बाद आता, तो मंदिर में मुझे न पाता।"

एक दूसरे इतिहासज्ञ ने पूछा—"ग़ज़नी के आक्रमण से बचाव का तुम लोगों ने क्या प्रबंध किया था?"

"यह काम गुजरात के महाराज भीमदेव का था। उनके बाहु-बल पर उन सबको भरोसा था। पर देवशर्मा की कुचालों ने सारा नक़्शा ही बदल दिया। यह मंदिर के अंदर एक भद्र महिला को छेड़ने के अपराध में जब दंडित किया गया, तब

मथुरा में जाकर यवनों से मिल गया, और उसी ने उन्हें सोमनाथ आने का निमंत्रण दिया।"

श्रीमती सोलंकी ने पूछा--"यह देवशर्मा कौन था?"

रत्ना की आँखें घृणा से चमक उठीं—"अरे, वही, जिसे जाते समय ग़ज़नी उस प्रदेश का राजा बना गया था।"

"हाँ-हाँ, पर वह था कौन?"

"सम्भवतः वह एक विद्वान् ब्राह्मण था। उसकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। स्वयं महाराज भीमदेव उसे अपने दरबार में उच्चासन पर बैठालते थे।"

इसी बीच में एक दूसरे इतिहासज्ञ ने प्रश्न किया—"मंदिर का ख़र्च कैसे चलता था? क्या उस द्रव्य से, जो मूर्ति पर चढ़ता था?"

"नहीं, वह द्रव्य तो पुजारी का होता था। उससे मंदिर के व्यय से कोई सरोकार नहीं था।"

"तब मंदिर के व्यय के लिये क्या प्रबंध था?"

रत्ना बोली—"यही तो मैं सोचती हूँ कि आज जो लोग मंदिर का पुनरुद्धार करने जा रहे हैं, वे क्या उसके लिये उस व्यय का प्रबंध कर सकेंगे? मंदिर के व्यय के लिये दस हज़ार ग्राम नियुक्त थे। इन ग्रामों से जो कर वसूल होता था, उसी से भगवान् सोमनाथ के समस्त सेवकों को वेतन दिया जाता था।"

"ऐसे वैतनिक सेवक कितने थे?"

"ठीक संख्या तो मैं नहीं बता सकती, पर आप अंदाज़ लगा सकते हैं। भगवान् के स्नान के लिये प्रतिदिन २ हज़ार कोस से गंगाजल आता था। उसके लिये डाक लगी हुई थी। ३५० वंदीजन प्रतिदिन एक स्वर से स्तुति-गान करते थे। मंदिर के द्वार पर ३०० गायक प्रातः-सायं भजन गाते रहते थे। ५०० महिलाएँ मंदिर में आरती के समय दोनो वक़्त नाचती थीं। १००० ब्राह्मण प्रतिदिन भगवान् शंकर का पूजन करते थे। मंदिर की ओर से ३०० नाई ब्राह्मणों की हजामत बनाने के लिये नियुक्त थे। इनके अतिरिक्त अगणित दास-दासी थे, और उन सबको मंदिर की ओर से वेतन दिया जाता था। ये सब सूर्य-ग्रहण और चंद्र ग्रहण के समय विशेष सक्रिय हो उठते थे, क्योंकि इन पर्वों मे मंदिर में बहुत बड़ी भीड़ होती थी, और बहुत दूर-दूर के यात्री आते थे।"

श्रीमती सोलंकी ने बात काटकर कहा—"परंतु बेटी, उस दिन तो तुमने कहा था कि फाल्गुन-मास में, जब आमों में बौर लगते थे, मंदिर में बड़ी भीड़ होती थी।"

"ओह मामी, उस दिन भगवान् शंकर की सवारी निकलती थी।"

"वह किस तरह ?"

"सुनिए। एक बड़े रथ पर, जिसे १००० ब्राह्मण खींचते थे, भगवान् शंकर की मृत्तिका की मूर्ति बठालकर निकाली जाती थी। पहले इस मूर्ति में मंदिर के अंदर प्राण-प्रतिष्ठा

की जाती थी। फिर मंदिर से बहुत बड़ा जुलूस निकलता था। सबसे आगे देव-दासियाँ क़तार बाँधकर, हाथों में कपूर के जलते दीपक लेकर, नृत्य करती हुई, चलती थीं। वे रेशमी वस्त्र धारण करती थीं। स्वर्ण-आभूषणों से अलंकृत होती थीं। उनके पाँवों में चाँदी के बड़े ही मधुर स्वरवाले घुँघरू होते थे, जो ताल के साथ उनकी पग-गतियों के साथ बज बज उठते थे। जब सवारी आगे बढ़ती थी, तब नगर-निवासी महिलाएँ और पुरुष, वृद्ध और बालक--अपने-अपने दरवाज़ों के सामने, मार्ग के दोनो ओर--आ खड़े होते थे। वे सब अपने-अपने हाथों में पूजा के थाल लिए होते थे, जिनमें एक पात्र में गंगाजल और थाल के शेष स्थान में अक्षत, धूप, दीप, पुष्प, बेलपत्र आदि होता था। देव-दासियाँ मार्ग के दोनो ओर खड़ी हुई भक्तों की क़तारों की आरतियों के दीपक अपने प्रज्वलित कपूर की दीप-शिखाओं से जलाती और नृत्य करती हुई आगे बढ़ती जाती थीं। इस प्रकार सारा मार्ग प्रज्वलित हो उठता था, और चंदन तथा पुष्पों की महक से गमक उठता था।

"देव-दासियों के पीछे सद्यःस्नात, चंदन-चर्चित, श्वेत वस्त्र-धारी १००० ब्राह्मण होते थे, जो उच्च स्वर से शिव स्तवन करते चलते थे। इनके पश्चात् भगवान् सोमनाथ का रथ चलता था, जिस पर पुजारी और उनकी कुँआरी कन्याएँ बैठी होती थीं। कन्याएँ शिव-मूर्ति पर चढ़नेवाली पुष्प-

मालाएँ उठा-उठाकर दर्शकों पर फेकती थीं, और पुजारी उन्हें प्रसाद में बाँटते थे। रथ के पीछे महाराज भीमदेव की सवारी चलती थी, और उनके पीछे उनकी पैदल और सवार सेना, अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित, निकलती थी। प्रातःकाल का उठा जुलूस संध्या को आरती के समय लौटकर मंदिर में आता था। वह अद्भुत समय होता था। वे दिन अब लौटकर नहीं आ सकते।"

एक इतिहासज्ञ ने कहा—"यदि यह वर्णन सत्य है, तो कहना चाहिए कि उन दिनों की राज्य-व्यवस्था बड़ी सुंदर थी।"

रत्ना बोली—"हाँ, यह सत्य है। यदि दृश्यों का फ़िल्म बनाने की कला उन दिनों होती, और उस दृश्य का फ़िल्म बन गया होता, तो आप उसे अवश्य देखते और मानते। परंतु मैं निवेदन करूँगी कि मेरी बातों के सहारे आप अपनी कल्पना को दौड़ावें, और इस दृश्य को अपने मानस-पटल पर अंकित करें।"

इसी समय ज्ञानचंद चिल्ला उठे—"सामने देखिए।" सचमुच एक इस प्रकार का जुलूस सामने की खिड़की से गुजर रहा था, जिसका रत्ना ने अभी-अभी वर्णन किया था।

सब लोग आश्चर्य-चकित-से सोलंकी-सदन के बाहर निकल आए, पर कहीं कुछ न दिखाई पड़ा। शाम हो गई थी, और सड़क के दीपक जल उठे थे।

एक विचित्र मानसिक स्थिति उन सब लोगों की हो गई थी। श्रीमती सोलंकी ने कहा—"भगवान् शंकर फिर से अपना रूप प्रकट कर रहे हैं।"

इस पर किसी ने हाँ या नहीं कुछ न कहा। रत्ना की कहानी अधूरी ही रह गई। दूसरे दिन शेष कहानी पुनः सुनने का आमंत्रण देकर श्रीमान् सोलंकी ने उन सबको बिदा किया।

उन सबके पीछे ज्ञानचंद भी जाने लगे।

"क्यों ज्ञान! तुम कहाँ चले?" श्रीमती सोलंकी बोलीं।

"मैं? मैं आज पुनः मंदिर में जा रहा हूँ। मैं उस प्रेत-कन्या का आह्वान करूँगा, जिसे मैं वहाँ कई बार देख चुका हूँ।"

"मैं भी चलूँ?" रत्ना बोली।

"नहीं। आज मुझे अकेले जाने दो। अगर जीवित लौटा, तो कल सबको ले चलूँगा।"

और ज्ञानचद संध्या के क्रमशः बढ़ते हुए अंधकार में विलीन हो गए।

---

( ११ )

दूसरे दिन समय पर सब लोग आ गए, और रत्ना ने अपनी कहानी आरंभ की—

"आज मुझे एक हज़ार वर्ष पूर्व की उन घटनाओं का स्मरण करके रोमांच हो आता है। तब के और अब के भारत में बड़ा अंतर है। तब संपत्ति की रक्षा की किसी को चिंता न थी। मंदिरों में संपत्ति बिखरी पड़ी रहती थी, पर कोई चुरानेवाला न होता था।

"और मंदिरों की बात मैं नहीं जानती, परंतु सोमनाथ का मंदिर एक प्रकार से जनता का बैंक था। मंदिर की दीवारों में छोटे-छोटे अगणित ताक बने हुए थे। उनमें लोग अपना धन लाकर रखते थे, और जब चाहते थे, निकालकर ले जाते थे। कोई किसी का धन न छूता था। मंदिर के अंदर सबको अभय-दान प्राप्त था। कोई कहीं से क़त्ल करके भी मंदिर में आता था, तो राजा के सिपाही उसे गिरफ़्तार नहीं कर सकते थे।

"हम लोगों को महाराज भीमदेव की सैनिक शक्ति पर पूर्ण विश्वास था। हम यह सुना करते थे कि देवशर्मा ग़ज़नी को चढ़ाकर यहाँ ला रहा है। परंतु सोमनाथ को हम अजेय

समझते थे। इसीलिये मंदिर से पवित्र-से-पवित्र वस्तु भी हटाई न गई थी।

"हम लोगों में घबराहट तब पैदा हुई, जब यह समाचार आया कि महाराज भीमदेव हारकर जंगल में जा छिपे हैं, और ग़ज़नी अविरोध गति से, प्रलय की अग्नि-सरिता के समान, विध्वंस करता हुआ सोमनाथ पर चढ़ा आ रहा है।

"'हाय, अब क्या हो!' इस प्रकार नगर-निवासियों ने आ-आकर मंदिर के आचार्य से कहना आरंभ किया।

"'धैर्य रक्खो, सब काम पूर्ववत् जारी रक्खो। भगवान् सोमनाथ सबकी रक्षा करेंगे।'

"भगवान् की शक्ति में हम सबका विश्वास था। आचार्य के इन वाक्यों से हम सबने किसी प्रकार साहस समेटकर ग़ज़नी के आक्रमण की प्रतीक्षा की।

"इतवार के दिन समाचार आया कि ग़ज़नी अत्यंत निकट आ गया है, और ख़ैर नहीं है। महाराज भीमदेव का संदेश आया कि मंदिर की संपत्ति और पवित्र मूर्ति सहित सब लोग समुद्र के रास्ते द्वारका चले जायँ। ऐसा हो सकता था। बड़ी-बड़ी नौकाएँ समुद्र में बँधी थीं। परंतु आचार्य ने फिर वही बात कही।

"'यदि ईश्वर की यही इच्छा है कि हम सबका विनाश हो, तो हो, अब हटेंगे नहीं।'

"हम सब सर्वनाश के लिये तैयार हो गए।

"आपने इस युग में महात्मा गांधी की अहिंसा के प्रयोग देखे हैं। परंतु वह उससे कहीं अधिक विशाल प्रयोग था, जो सोमनाथ के आचार्य ने किया था। उन्होंने, जो राजपूत प्राण देकर मंदिर की रक्षा के लिये जमा थे, उनसे हट जाने को कहा, और घोषणा की कि मंदिर में आनेवाले पर कोई पुष्प से भी वार न करे, भले ही आनेवाला हम सबको बोटी-बोटी काट डाले।

"मथुरा के विनाश के समाचार हम पा चुके थे। हम सबके हृदय उस क़ैदी के समान धड़क रहे थे, जिसे फाँसी की सज़ा सुना दी गई हो, और जिसके मरण की घड़ी निकट आ गई हो। पर न-जाने कौन-सा विश्वास था, जिससे हमारे आचार्य प्रेरित थे। उन्हीं के कारण अनेक लोग, जो भागकर अपनी जान बचा सकते और अपमानित होने से बच सकते थे, मंदिर में पड़े रहे, और जिस शारीरिक तथा मानसिक यंत्रणा को भोगा, वह वर्णनातीत है।

"बृहस्पति के दिन महमूद की विकराल अजगर-सी आगे बढ़ती हुई सेना मंदिर के सामने आकर खड़ी हो गई। पश्चिम, उत्तर और पूर्व, तीनो तरफ़ से मंदिर घिर गया। राजपूत, जो मंदिर के बाहर खड़े थे, नत-मस्तक थे। उन्होंने युद्ध तो नहीं किया, पर केवल इतना कहा—'आप हमें मार-कर ही अंदर जा सकते हैं।'

'"तुम युद्ध क्यों नहीं करते हो?' महमूद ने पूछा।

"'हमें युद्ध करने की आज्ञा नहीं है। हम आपसे केवल प्रार्थना करते हैं कि मंदिर की पवित्रता की रक्षा करें।'

"'क़त्ल कर दो इन काफ़िरों को।' महमूद ग़ज़नी ने आज्ञा दी।

"राजपूतों के रक्त से मंदिर के गिर्द की भूमि लाल हो गई! यह समाचार आचार्य ने सुना, तो आज्ञा दी कि मंदिर के सब द्वार बंद कर दिए जायँ।

"इसका तत्काल पालन किया गया। तब मुसलमान सैनिकों ने मंदिर के परकोटों पर चढ़कर और अंदर कूद-कूदकर जन-संहार आरंभ कर दिया। कुहराम छा गया! नर-नारियों के आर्त नाद से सारा मंदिर गूँज उठा!

"आचार्य अब भी मूर्ति के पास बैठे अपने ध्यान में अडिग थे। एक हज़ार ब्राह्मण, जो शिव के स्तवन में सलग्न थे, आचार्य के आदेश से महमूद ग़ज़नी को समझाने चले।

"महमूद अब तक मंदिर के अंदर अपने अंग-रक्षकों से घिरा आ गया था। इन एक हज़ार ब्राह्मणों ने मस्तक झुकाकर, हाथ जोड़कर ग़ज़नी से प्रार्थना की कि वह निरपराध व्यक्तियों का संहार रोके।

"'ये कौन हैं?' ग़ज़नी ने पूछा।

"'मूर्ति-पूजक।' उसके संवाद-दाताओं ने उससे बताया।

"'इनको जल्द-से-जल्द क़त्ल करने से स्वर्ग में बैठे परमात्मा को बड़ी खुशी होगी!' उसने कहा। उसके साथ ही हज़ारों

तलवारें चमक उठीं, और उन सब पंडितों के सिर धड़ से अलग हो गए ! गर्म रक्त के फ़ौवारे-से चारों तरफ़ छूट पड़े, और सारा मंदिर एक विचित्र भयानक मृत्यु-धाम-सा बन गया।

"आचार्य अब भी मूर्ति के निकट बैठे थे। पाँच सौ देव-दासियाँ हाथों में आरती के दीपक लिए अंतिम आरती के लिये तैयार खड़ी थीं। उसी समय महमूद का क्रूर और अत्यंत कुरूप चेहरा हम सबको दिखाई पड़ा। उसके साथ पंडित थे, जो संस्कृत में कही गई बातों को सुनकर फ़ारसी में उसको समझाते थे।

"आचार्य ने इन पंडितों को संबोधित करके जो कुछ कहा, उसे उन्होंने ग़ज़नी को तत्काल समझा दिया।

"ग़ज़नी मुस्कराया। उसकी मुस्कराहट अगणित विषधरों की फुफकार-सी हमें प्रतीत हुई। पर संभवतः इतने निरीह लोगों का रक्तपात करने के बाद वह कुछ मुलायम पड़ गया था। अतएव आचार्य का वध करने से पूर्व उसने उनसे बहुतेरी बातें कीं, और उन पाँच सौ देव-दासियों का आरती-नृत्य देखा।

"आचार्य ने उसे करोड़ों स्वर्ण-मुद्राएँ देने और मूर्ति को छोड़ देने की बात कही, पर उसने सिर हिलाया, जिसका पंडितों ने यह अर्थ बताया कि यह मूर्ति-भंजक है मूर्ति-विक्रेता नहीं।

"तब आचार्य ने अपनी गर्दन ग़जनी के सामने झुका दी।

"ग़जनी की आज्ञा से उसके एक अंग-रक्षक ने आचार्य का सिर धड़ से अलग कर दिया! उनके उष्ण रक्त के छींटे मेरे कपोलों पर पड़े। उन्हें अपने हाथों से पोंछकर मैंने शिव की मूर्ति में लगाए और बोली—'भगवान्, जागो।' परंतु भोला-नाथ जैसे गहरी निद्रा में निमग्न थे।

"तब महमूद आगे बढ़ा। अपनी लोहे की गदा से उसने मूर्ति पर प्रहार किया, जिससे मूर्ति के कई खंड हो गए! तब उसने सिपाहियों को आज्ञा दी—'इन्हें हटाओ यहाँ से।'

"मूर्ति-खंड तत्काल वहाँ से हटाए गए। हम सब कन्याएँ किंकर्तव्य-विमूढ़-सी जहाँ-की-तहाँ खड़ी रहीं। तब महमूद उस मंच पर आ खड़ा हुआ, जिस पर मूर्ति थी, और आज्ञा दी—'मैं तुम्हारे सोमनाथ से अधिक शक्तिशाली हूँ। अब तुम सब मेरा पूजन करो।'

"उसके साथ के पंडितों ने यह बात शेष बचे हुए लोगों को समझाई, और भयभीता देव-दासियों ने उसे ही साक्षात् भगवान् शंकर समझकर उसके सामने नृत्य आरंभ किया।

"सोमनाथ के वैभव के इस आसन पर खड़ा होकर और अपने को इस प्रकार पूजित होते देखकर महमूद जैसे स्वर्ग में पहुँच गया हो! उसने आज्ञा दी—'अब मार-काट बंद करो। अब यह वैभव हमारा है। ये सब स्त्रियाँ, यह सब संपत्ति हमारी है।'

"मार-काट बंद हो गई। हम सब जो स्त्रियाँ जीवित बची थीं, बंदिनी बना ली गईं। मंदिर में जो पुजारी आदि मारे गए थे, उनकी गिनती की गई। घोषित किया गया कि पचास हज़ार काफ़िर मारे गए हैं, और अरबों की संपत्ति हाथ लगी है।

"इधर यह लेखा-जोखा हो रहा था, उधर समाचार आया कि महाराज भीमदेव ने महमूद की फ़ौजों पर हमला कर दिया। परंतु मंदिर को क़िला बनाकर ग़ज़नी की फ़ौज भीमदेव से लड़ी, और उन्हें मारकर भगा दिया।

"भीमदेव जाते-जाते यह घोषणा कर गया कि ग़ज़नी को ज़िंदा वापस नहीं जाने दूँगा, और अपने पुनः-संगठन में लग गया।

"ग़ज़नी ने देवशर्मा को मंदिर का आचार्य नियुक्त किया, और भीमदेव के पुनःसंगठन से पहले ही दूसरे रास्ते से वापस जाने की तैयारी की।

"यहाँ मैं यह बता दूँ कि आचार्य के जिस शिष्य के साथ मेरा विवाह होनेवाला था, उसने मुझे बृहस्पति के ही दिन एक कटार लाकर दी थी कि रक्षा का कोई उपाय न देखना, तब इससे आत्महत्या कर लेना। हाय! मुझसे मरा न गया।

"और जब महमूद ग़ज़नी सोमनाथ की संपत्ति हज़ारों ऊँटों पर लादकर और हम सब युवती कन्याओं को बंदिनी

बनाकर ले चला, तब मार्ग में मैंने देखा कि मेरा वही प्रियतम उसका मार्ग-दर्शक है। शायद उससे भी मरा न गया था।

"क्रमशः बालुकामय निर्जल प्रदेश में हम सब प्यास से तड़फड़ाने लगे, और ज्यों-ज्यों हमारा कष्ट बढ़ा, हमने देखा कि वह युवक प्रसन्न है।

"एक संध्या को पस्त होकर ग़ज़नी ने डेरा डाल दिया। चारों ओर बालू ही-बालू थी। ग़ज़नी ने उस युवक को बुलाकर पूछा—'तुम हमें कहाँ लाए हो ?'

"उसने जवाब दिया—'आप ठीक मार्ग पर हैं। शीघ्र ही पानी मिलेगा।'

"महमूद ने कहा—'तुम झूठे हो। तुम हम सबको मारने के लिये यहाँ लाए हो।'

"युवक मुस्कराया। बोला—'अगर भगवान् सोमनाथ की कृपा हुई, तो ऐसा ही होगा !'

"उसकी इस एक बात से हम सब बंदिनी नारियों को बड़ी आशा हुई कि हम अब अपमानित होने से बच जायँगी। परंतु भगवान् फिर भी न पसीजे। ग़ज़नी ने उसे बेरहमी से कोड़ों से पीटना शुरू किया, और पीटते-पीटते मार डाला।

"संभवतः सूर्य भगवान् से यह क्रूर दृश्य न देखा गया, और वह तत्काल अस्ताचल पर पहुँच गए। रजनी ने इस समस्त

भयावने दृश्य पर काला परदा डाल दिया। ऊँटों के पेट फाड़-फाड़कर सैनिक जल निकालने लगे, और समस्त सेना को वितरित करने लगे।

"हमें नींद न आई। परंतु रात भी इतनी जल्दी बीती कि कुछ पता न चला। सबेरा होते ही थोड़ी ही दूर पर पानी दिखाई पड़ा। ग़ज़नी कितना भाग्यशाली था, और हम सब कितने अभागे, मानो वह पानी यही कह रहा था!

"सोमनाथ के धन के साथ हम सब नारियों को भी बंदिनी बनाकर ले चलने के लिये सारे भारत में रोप छा गया था, जो मार्ग में छोटे-मोटे आक्रमणों के रूप में यदा-कदा प्रकट हो उठता था। उन सब वीरों को काटता हुआ महमूद हम सबको लेकर ग़ज़नी पहुँचा।

"जिस तरह उस एक हज़ार वर्ष पूर्व के जन्म में मुझसे मरा न गया, उसी प्रकार इस जीवन में भी, जब पाकिस्तानी मेरे पिता को मारकर मुझे ले चले, मुझसे मरा न गया। हाय! मैं कितनी कायर हूँ!"

यह कहकर रत्ना रूमाल से अपने उमड़ते हुए अश्रु-पूरित नयनों को पोंछने लगी, और सिसक-सिसककर रोने लगी।

"संसार चाहे जो कहे या समझे, विश्ववंद्य महात्मा गांधी की चाहे जो इच्छा रही हो, गौतम बुद्ध और ईसा ने अहिंसा की चाहे जैसी शक्ति समझी हो, पर मेरा जन्म-जन्म का अनुभव यही कहता है कि जब तक हिंदू तलवार से अपने मंदिरों और

अपनी नारियों की रक्षा में समर्थ न होंगे, तब तक इस्लाम के अनुयायियों से उन्हें खतरा बना रहेगा। राम-राज्य की स्थापना का स्वप्न बापू देखा करते थे। पता नहीं, बापू के विचार में राम-राज्य की वह मर्यादा थी या नहीं, जिसने सीता का हरण करनेवाले रावण का सिर काट लिया था, और उसकी लंका फूँक दी थी। आज, जब कि देश में अपना राज्य है, हमें यह अवसर मिला है कि अपनी उस प्राचीन संस्कृति को हम नवजीवन प्रदान करें।

"सोमनाथ के मंदिर के नव-निर्माण का इतना ही अर्थ न होना चाहिए कि उसमें नवीन मूर्ति स्थापित हो जाय, और पुनः पूजा होने लगे, बल्कि उसका अर्थ होना चाहिए कि हमारे मंदिरों और हमारी देवियों को जो भी कुदृष्टि से देखेगा, उसे हमारी क्रोधाग्नि भस्म कर देगी। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि यद्यपि महमूद ने सोमनाथ के मंदिर को ध्वंस कर दिया था, तथापि असंगठित और बिखरे भारतीयों की क्रोधाग्नि ने उसे यहाँ तक त्रस्त किया था कि फिर वह भारत पर कोई बड़ा हमला नहीं कर सका।"

बीच-बीच में कई लोगों ने रत्ना से कई प्रकार के प्रश्न किए, जिनका उसने संतोष-जनक उत्तर दिया।

रत्ना अपना भाषण समाप्त भी न कर पाई थी कि उसे कमरे के द्वार पर उस युवक की आकृति-सी दिखाई पड़ी, जो अब से एक हजार वर्ष पूर्व उसके प्रेम का इच्छुक था।

रत्ना पागलों की भाँति उठ खड़ी हुई—"अरे, तुम यहाँ ?"

वह उसे अपनी बाँहों में आबद्ध करने आगे बढ़ी, पर वहाँ कोई न था। केवल ज्ञानचंद कुछ घबराए-से, कुछ भयभीत-से वहाँ खड़े हुए थे, और कह रहे थे—"रत्ना, तुम्हें क्या हो गया है ?"

---

( १२ )

रत्ना की कहानी सुनते-सुनते ज्ञानचंद के मन में यह बात बैठ गई कि मंदिर में उन्होंने जो दृश्य देखे थे, वे उनके निर्बल मस्तिष्क की कल्पनाएँ-मात्र ही नहीं हैं, अवश्य ही उस भग्न मंदिर में कुछ ऐसी सूक्ष्म आत्माएँ अब भी निवास कर रही हैं, जो मंदिर तोड़े जाने के समय वहाँ मानव-रूप में विद्यमान थीं।

उसे अपने ऊपर क्रोध आया कि उन आत्माओं के साथ साक्षात्कार का सुअवसर मिलने पर भी वह भयाक्रांत हो उठने के कारण उनका कोई ज्ञान प्राप्त न कर सका। मृत्यु से उसे भय क्यों लगता है? अब कौन है, जिसके लिये वह जीवित रहे? रत्ना? शायद! शायद नहीं! पर रत्ना भी उसी अतीत का एक अंग है, जो इन खँडहरों में सुप्त पड़ा है। शायद वह इसीलिये बच गया है कि वह इस रहस्य का भेद मालूम करे, और इस प्रकार देश को कुछ नवीन ज्ञान दे सके।

इन्हीं विचारों में उलझे ज्ञानचंद लंबे क़दम बढ़ाते सोम-नाथ के भग्न मंदिर की ओर चले जा रहे थे। पूर्णमासी का चंद्रमा सिर के ऊपर आ गया था, और समुद्र की लहरें उसे

चूमने के लिये ऊपर उठने का उपक्रम-सा करती प्रतीत हो रही थीं।

ज्ञानचंद मंदिर के द्वार पर जाकर खड़े हो गए। चारों तरफ़ सन्नाटा था। समुद्र का गर्जन उस सन्नाटे को और भी शून्य बना रहा था। ऐसे में भूत-प्रेत की कल्पना का हृदय में उदय होना स्वाभाविक ही है। वह प्रेत-कन्या आज दिखाई पड़े, तो वह उससे नहीं डरेंगे, कदापि नहीं। वह उससे उसका परिचय पूछेंगे, अपना परिचय उसे देंगे।

संभव है, उसकी सहायता से वह अपने परिवार के उन जनों का भी साक्षात्कार कर सकें, जो पाकिस्तान में व्यर्थ क़त्ल हुए हैं।

ज्ञानचंद मंदिर के द्वार पर बहुत देर तक खड़े रहे, पर उन्हें कहीं कुछ दिखलाई न पड़ा। आज वह अपना हृदय मज़बूत करके आए हैं, प्रेतों से साक्षात्कार करने को लालायित हैं। परंतु भगवान् सोमनाथ की यह कैसी लीला है कि उन्हें कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता!

इसी प्रकार मन-ही-मन तर्क-वितर्क करते हुए वह मंदिर के अंदर घुसे, और तमाम घूम आए, परंतु उन्हें कहीं कुछ दिखाई न पड़ा। तब वह थककर मंदिर के पश्चिमवाले टीले पर बैठ गए। वहाँ से पश्चिम की ओर दूर तक फैला हुआ क़ब्रिस्तान चंद्रमा की रोशनी में साफ़ दिखाई पड़ रहा था। हो सकता है, इस क़ब्रिस्तान में ग़ज़नी के वे सिपाही भी दफ़न

हों, जो यहाँ लड़ाई में मारे गए हों। पर नहीं, लड़ाई हुई ही कहाँ थी ? वहाँ तो एकतरफ़ा मार हुई थी। हिंदू ही मारे गए थे, केवल हिंदू।

"नहीं, मुसलमान भी काफ़ी मारे गए थे, जब महाराज भीमदेव ने मंदिर पर आक्रमण किया था।"

ज्ञानचंद को लगा कि उनके कानों में कोई उपर्युक्त वाक्य कह रहा है। उन्होंने अपनी बाईं तरफ़ घूमकर देखा। वही युवती थी, जो उन्हें उस भग्न मंदिर में प्रथम दिन दिखलाई पड़ी थी।

ज्ञानचंद ज़रा भी डरे नहीं, चौंके नहीं, डिगे नहीं, चुपचाप उसी प्रकार बैठे हुए बोले—"तो ये उन्हीं मुसलमानों की क़ब्रें हैं, जो उस समय मारे गए थे ?"

"सब नहीं, पर कुछ तो ज़रूर हैं। क्या आप उस दृश्य को देखना पसंद करेंगे ?"

"हाँ, यदि आप दिखलाने की कृपा करें।"

"देखिए।"

ज्ञानचंद ने देखा, भग्न मंदिर के स्थान पर सोमनाथ का पूर्ण मंदिर अपने वैभव के साथ खड़ा है, और उन्हें लगा कि वह एक दीवार के अंदर से देख रहे हैं, जैसे काँच की दीवार हो। एकाएक भीषण जन-घोष उन्हें सुनाई पड़ा। उन्होंने देखा, मंदिर के अंदर मुसलमान सैनिक हैं, और बाहर से राजपूत आक्रमण कर रहे हैं। तलवारें, भाले और तीर दोनो तरफ़ से चल रहे हैं, और दनादन लाशें गिर रही हैं।

उन्होंने पलक मारी, और सब दृश्य, जैसे वह स्वप्न देख रहे हों, इस प्रकार, मिट गया।

उनकी बग़ल में बैठी वह युवती मुस्किरा रही थी। "देखा आपने ?"—वह बोली।

"हाँ, परंतु आप इतिहास के वे पृष्ठ इस प्रकार सजीव रूप में किस प्रकार उपस्थित कर देती हैं ? यह क्या कोई कला है ? अगर है, तो कृपा कर मुझे भी बताएँ।"

"सूक्ष्म आत्माएँ कोई भी रूप, जो वे चाहें, धारण कर सकती हैं। आप भी जब शरीर त्याग करेंगे, इस प्रकार के दृश्य इच्छा करते ही उपस्थित कर सकेंगे।"

"हाँ, क्या मैं आपका परिचय पा सकता हूँ ?"

"मैं भगवान् सोमनाथ के चरणों की एक क्षुद्र सेविका हूँ। मैंने ग़ज़नी के हमले के समय उसके अत्याचार से त्रस्त होकर पुरुष का वेष धारण करके उसके सिपाहियों पर तलवार चलाई थी। कितनों ही को मैंने मार गिराया था, और अंत में मैं भी लड़ते-लड़ते मारी गई थी। देखिए, इस प्रकार—"

ज्ञानचंद के सामने मंदिर के एक तंग रास्ते में युद्ध का यह दृश्य सजीव हो उठा। उन्होंने देखा, दो खंभों के बीच में खड़ा एक युवक हाथ में नंगी तलवार लिए उस रास्ते से आनेवाले यवन सैनिकों के सिर काट रहा है।

"देवी, तुम्हें धन्य है! भारत को आज ऐसी ही ललनाओं की आवश्यकता है।"

ज्ञानचंद ने फिर पलक मारी, और यह दृश्य भी उनकी आँखों के सामने से ओझल हो गया। उन्होंने अपनी बगल में देखा कि वह युवती फिर भी मुस्किरा रही है।

"देखा ?" वह बोली।

"हाँ।" ज्ञानचंद ने कहा—"लाओ, तुम्हारे चरणों का स्पर्श कर लूँ। तुम वीर नारी हो !"

"नहीं-नहीं, तुम मुझे नहीं पहचानते। अगर ये घटनाएँ घटित न होतीं, और हम-तुम जीवित होते, तो शायद........"

"शिव-पार्वती के समान सोमनाथ में निवास करते !"

"इसमें क्या संदेह है ? वही अतृप्त इच्छा आज तक हमें संसार में भटकाती रहती है। और नहीं, तो हम मोक्ष न पा गए होते ?"

"अच्छा, तो आपका परिचय तो मुझे मिला, परंतु मैं क्या था ?"

"अरे, आपको स्मरण नहीं कि आप ही तो पथ-प्रदर्शक बनकर महमूद ग़ज़नी को रेगिस्तान में गुमराह करने ले गए थे ?"

"मैं ?"

"हाँ, आप।"

ज्ञानचंद को लगा कि जैसे वह कोई महान् अवतारी पुरुष हैं। उन्हें अपनी भुजाओं में नूतन बल और अपने हृदय में नूतन उमंग उठती हुई प्रतीत हुई। उन्होंने कहा—"भगवान्

सोमनाथ को धन्य है, जिन्होंने मुझसे उस जन्म में यह काम लिया! परंतु इस जन्म में तो मैं कुछ नहीं कर सका।"

"शायद आगे चलकर आप कुछ कर सकें। अभी हमें-आपको बहुत काम करना है।"

एकाएक ज्ञानचंद को स्मरण आया कि रत्ना ने जो कहानी कही थी, उसमें भी उसने एक ऐसे ही युवक का वर्णन किया था, जो शायद पूर्व-जन्म में मैं था। तो रत्ना, क्या यही प्रेत-कन्या है? और, यदि है, तो क्या यह हो सकता है कि एक ही आत्मा प्रेत भी हो और मनुष्य-योनि में भी हो?

उन्होंने पूछा—"उस रोज़ मंदिर में हमारे साथ जो युवती आई थी, आपने उसे भी पहचाना?"

"क्यों नहीं? जिसे आप रत्ना कहते हैं, भला, उसे मैं न पहचानूँगी? आचार्य की कन्या, मेरी सहेली! वह भी आपको मेरे ही समान प्यार करती थी। हम दोनो ने तय किया था कि जहाँ रहेंगी, साथ ही रहेंगी, और रहती कहाँ, इसी मंदिर में आपके साथ!"

"एक पुरुष की दो पत्नियाँ?"

"हाँ हाँ, उस युग में उच्चवंशीय पुरुष कई-कई पत्नियाँ रख सकते थे।"

"तो आप मुझे क्या आज्ञा देती हैं? कहीं मरकर प्रेत-योनि में आपके साथ विचरण करूँ या जैसा हूँ, वैसा ही रहूँ, और

रत्ना के साथ बीती स्मृतियों के सहारे भावी जीवन के स्वप्नों का साक्षात्कार करूँ ?"

"यह तो तुम्हारे चुनने की बात है।"

"मेरे ?"

"हाँ, तुम्हारे।"

ज्ञानचंद ने उस प्रेत-कन्या की ओर ध्यान से देखा। उनके हृदय में अपने मानव-जीवन के प्रति असीम मोह-लहरें मार उठा, और वह जैसे भयभीत-से हो उठे।

"आप डर रहे हैं। डरे हुए मनुष्य के पास प्रेत अधिक देर तक नहीं रह सकता। अच्छा, तो विदा !"

"नहीं-नहीं, मैं डरा नहीं हूँ।" ज्ञानचंद ने दृढ़ता से, पर कंपित स्वर में कहा।

परंतु वह युवती अब ज्ञानचंद की आँखों से ओझल थी। उन्होंने जोर-जोर से कहना शुरू किया—"प्रियतमे ! मैं तुम्हारे लिये प्राण देने को तैयार हूँ। मुझे दर्शन दो।"

परंतु ज्ञानचंद को कहीं कुछ दिखाई न पड़ा ! वह अर्द्ध-निद्रित, थकित, शिथिल मंदिर में उसी स्थान पर पड़े रहे। और, दूसरे दिन, जब सूर्य की सुनहली किरणों के साथ जगने-वाले पक्षियों ने अपने कलरव से उन्हें जगाया, तब, उन्हें जान पड़ा कि वह जैसे कोई पागल हों।

दिन के प्रत्यक्ष प्रकाश में भी वह भग्न मंदिर में इधर-उधर भटकते रहे। और अंत में सोलंकी-सदन में लौट आए।

रत्ना, जो अपनी कथा समाप्त कर चुकी थी, उन्हें अपना वही हजार वर्ष पूर्व का प्रेमी समझ अपनी बाँहों में आबद्ध करने दौड़ी। परंतु ज्ञानचंद के उस वाक्य से कि "रत्ना, तुम्हें क्या हो गया है?" वह एकाएक ठिठक गई।

ज्ञानचंद ने मिस्टर सोलंकी को संबोधित करके कहा—"श्रीमान् सोलंकी साहब, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। जो जिस पर स्नेह रखता है, वह उसे अपने हर जन्म में पाता है। रत्ना मेरी पूर्व-जन्म की साथिन है। भगवान् सोमनाथ की जय!"

---

# हमारी पुस्तकालय-योजना *

वंदि विनायक बिघन-अरि, न छन विघन समुहाहिं ;
कर-इंगित के करत ही छुईमुई ह्वै जाहिं।

हमारे मित्र श्रीबेरीजी ने आज जिस विषय पर अपने विचार प्रकट करने के लिये आमंत्रित किया है, वह है 'हिंदी-प्रकाशक तथा पुस्तकालय-योजना'। यह विषय ऐसा है, जिसके बारे में प्रकाशक बंधुओं से कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के तुल्य होगा, क्योंकि पुस्तकालयों की आवश्यकताओं की पूर्ति ही तो उन्हें करनी पड़ती है।

हिंदी-प्रकाशन के शुभ कार्य का श्रीगणेश करने का श्रेय हमारे परबाबा श्रीमान् नवलकिशोरजी सी० आई० ई० को है, जिन्होंने हज़ार से ऊपर हिंदी-संस्कृत-ग्रंथों का प्रकाशन किया। तब भारत में सार्वजनिक पुस्तकालय नाम-मात्र को थे। उन्होंने सस्ती और उपयोगी पुस्तकें छापकर गाँवों से शहरों तक—झोपड़ियों से महलों तक—पहुँचाईं। उसके बाद खेमराज श्रीकृष्णदास, (निर्णय-सागर प्रेस), इंडियन-प्रेस, नागरी-प्रचारिणी सभा, हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, लहरी-प्रेस, साहित्य-भवन, हिंदी-मंदिर, निहालचंद एंड को०, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, हिंदी-पुस्तक-एजेंसी, ज्ञान-मंडल, आर० एल्० बर्मन, आदि-आदि ने श्रेष्ठ, सुंदर और उपयोगी साहित्य का प्रकाशन करके पुस्तकालयों के भंडार को भरा। १९१७ से गंगा-पुस्तकमाला ने

* अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, काशी के लिये लिखित।

भी एक पुस्तकालय-योजना तैयार करके भारत-भर में एक लाख सार्वजनिक एवं घरेलू पुस्तकालय खुलवाने का बीड़ा उठाया। इसमें बहुत कुछ सफलता उसे मिली भी। यह सब हिंदी-प्रेमी और सत्साहित्य-सेवियों के सहयोग से ही संपन्न हो सका है। गंगा पुस्तकमाला तो उपलक्ष्य-मात्र है। आधुनिक काल में भी हिंदी-प्रचारक, राजकमल, आत्माराम ऐंड संस, भारती-भंडार आदि सैकड़ों प्रकाशक सत्साहित्य का सृजन और प्रकाशन करके इस विशाल और परमोपयोगी पुस्तकालय-योजना में पुराने प्रकाशकों का हाथ बँटा रहे हैं, यह परम प्रसन्नता की बात है।

सारे संसार का ज्ञान पुस्तकों में रहता है, और उन पुस्तकों से तभी अधिक-से-अधिक व्यक्ति न्यून-से न्यून व्यय में लाभ उठा सकते हैं, जब नगर-नगर, डगर-डगर और घर-घर में पुस्तकालय स्थापित हों। ये पुस्तकालय विभिन्न श्रेणी और विचार के लोगों के लिये मिलन-केंद्र होते हैं। वहाँ वे अपनी मानसिक और बौद्धिक उन्नति कर सकते हैं। घरेलू पुस्तकालयों में स्त्री-पुरुष और बालक-वृद्ध सभी अपना मनोरंजन करते हुए ज्ञान-वृद्धि कर सकते हैं, अपने इष्ट-मित्रों और पड़ोसियों को भी उससे लाभ उठाने का मौक़ा दे सकते हैं। हिंदी-प्रकाशकों को इस पुस्तकालय-आंदोलन को अपने हाथ में लेकर द्रुत गति से इसे आगे बढ़ाना चाहिए। उन्हें यह आंदोलन करना चाहिए कि जब कोई महानुभाव दस बीस हजार रुपए लगाकर अपने रहने के लिये गृह का निर्माण करें, तो एक कमरे की कुछ अलमारियाँ सत्य शिव और सुंदर साहित्य से भी सुसज्जित करने के लिये अलग कर दें।

यदि प्रत्येक व्यक्ति, जो सौ रुपए से अधिक कमाता है, यह

प्रण कर ले कि अपनी आय का सौवाँ हिस्सा हिंदी-ग्रंथों को संग्रह करने में लगाएगा, तो उसका सदन सत्साहित्य की सुगंध से सुवासित तो होगा ही, 'भारती भाषा' के भंडार को भव्य और नव्य रत्नों से भरने में भी उनका बहुत योग होगा। हिंदी-प्रकाशकों और हिंदी-प्रकाशनों का भविष्य इस विशाल पुस्तकालय-योजना पर ही निर्भर है। हिंदी-प्रकाशक जितनी लगन के साथ इस आंदोलन को उठाएँगे, और सार्वजनिक पत्रों एवं पुस्तक-विक्रेताओं, कन्वेसरों और प्रतिष्ठित हिंदी-प्रेमियों और सेवियों के सहयोग से इसे सफल बनाएँगे, उतनी ही द्रुत गति से हिंदी-साहित्य की श्री-वृद्धि होगी।

पुस्तकालय-योजना का विषय बहुत विशाल है, इस पर तो एक स्वतंत्र पुस्तक की आवश्यकता है। संसार के सच्चे विश्व-विद्यालय पुस्तकालय ही होते हैं। जैसे किसी अच्छे आराम में, जिसकी क्यारियों में कमनीय कुसुम खिले हुए हों, जो चारो ओर से सुवासित हो, घूमने से मन नहीं अघाता, वैसे ही पुस्तकालय की पवित्रता प्रदान करनेवाली पुस्तकों के पाठ से परम प्रसन्नता प्राप्त होती है। इसलिये पुस्तकालयों के सृजन में जो लोग लगते हैं, वे अपनी भाषा भारती की पुष्टि-प्रगति और प्रचार-प्रसार में अपना समय देकर पुण्य के भी भागी होते हैं। हम सब प्रकाशकों को और पुस्तक-विक्रेताओं को भी इस पुस्तकालय-योजना को आगे बढ़ाना चाहिए, और इसे समस्त साहित्य-सेवकों के सहयोग, सहायता और सहानु-भूति से सफल करना चाहिए, क्योंकि—

हो यदि 'भाषा भारती'-ग्रंथालय भरपूर,
तो प्यारो, भारत-प्रगति नहीं बहुत है दूर।

उत्तम-उत्तम ग्रंथ जो रहे आप हैं छाप,
जनता में फैलाइए कर यह कार्य-कलाप।
नगर-नगर, घर-घर अगर खोलें ग्रंथागार,
तो भारत-आराम में छाय बसंत-बहार।
हाथ बटावें बंधु सब, करें देस-उत्थान,
पावें ख़ुद भी लाभ ही, हो सबका कल्यान।

अंत में प्रकाशक बंधुओं से अपनी त्रुटियों के लिये क्षमा-याचना और परम पिता परमात्मा से प्रार्थना करते हुए अपना यह वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

जन-जन-मन दरसन को तरसैं।
मुरलीधर ! धर अधर मुरलिका, मुखर मधुरिमा सरसैं ;
रुनझुन-रुनझुन-धुनि सुनि, मन गुनि उनमन जन-गन हरसैं।
जन-जन-मन०
दीनदयाल ! दया दीनन द्रवि दीजै, दीन न दरसैं ;
तन, मन, धन, जन, जीवन अरपन करि प्रिय प्रभु-पद परसैं।
जन-जन-मन०
नंद - नंद सुख - कंद कौ मंद हँसत मुख - चंद ;
नसत दंद - छलछंद - तम, जगत जगत - आनंद।

दुलारेलाल